केरल ज्योति

मई 2024

ISSN 2320-9976
UGC Care - List

ISO 9001: 2015

केरल हिंदी प्रचार सभा

केरल हिन्दी प्रचार सभा के पूर्व मंत्री
स्व.एम.के.वेलायुधन नायर की
पुण्य-तिथि सम्मेलन के विविध दृश्य

पुष्प : 61 दल : 2 अंक: **मई 2024**

अनुक्रमणिका

संपादकीय 5

युगे-युगे क्रांति में वैवाहिक परिकल्पना - **डॉ.प्रकाश.ए** 6

भ्रमभंग उपन्यास और मध्यवर्ग - **डॉ. गोपिका.के.के** 10

'बदबू'-में वांछनीय होशोहवास की अभिव्यक्ति-**डॉ.प्रदीपा कुमारी.आर** 12

आधुनिक हिंदी टेलीविज़न विज्ञापनों में महिला शाक्तीकरण का प्रतिष्ठान : एक गुणात्मक शोध - **डॉ. अलका मकवान** 15

निर्मलवर्मा की कहानी मायादर्पण में नारी चेतना-**डॉ. षीना.वी.के.** 20

स्वर्ग (कविता) - **डॉ. जॉय वाऴयिल** 22

वर्तमान का आभासी खेल और जैनेंद्र कुमार की 'खेल'- **डॉ.जूलिया एम्मानुएल** 23

रुचि सुगंध है मानवता(कविता) - **डॉ.सीताराम गुप्त 'दिनेश'** 26

स्वाधीनता संग्राम और हिंदी - **डॉ. गिरधारी लाल लोधी** 27

दलितों में स्वतंत्रता बोध- दलित उपन्यास के संदर्भ में **डॉ.उषाकुमारी.जे.बी** 31

शब्द जो भीतर ही भीतर बजते रहते हैं - निर्मला पुतुल की कविता - **डॉ. विजयकुमार.ए. आर** 34

'मैं पायल' में चर्चित किन्नर समस्याएँ - **डॉ. गायत्री.एन** 37

शब्दकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त का साहित्य : आधुनिक संदर्भ में एक पुनर्विचार - **डॉ. गोपकुमार.जी** 40

'कुइयाँजान' में चित्रित जल समस्या - **डॉ.कला.टी.वी** 43

आदिवासी साहित्य - **डॉ.सिमी.टी** 46

तीसरी ताली उपन्यास में किन्नर विमर्श- **डॉ. सुनील एम पाटिल** 49

'रेत' उपन्यास में राजनीति - **डॉ.रजनी.पी.बी** 52

देवयानम् (आत्मकथा) **मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा, अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना** 54

'पट्टिनत्तार' (काव्य) **मूल : पी.रविकुमार, अनुवाद : प्रो.डी. तंकप्पन नायर** 55

प्रश्नोत्तरी - **डॉ.रंजीत रविशैलम** 58

*मुखचित्र : मलयालम के यशस्वी कवि, प्रमुख पत्रकार एवं सरस्वती सम्मान से विभूषित **श्री प्रभावर्मा***

केरलज्योति

केरल हिंदी प्रचार सभा की मुख पत्रिका

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय की वित्तीय सहायता से प्रकाशित)

केरल हिंदी प्रचार सभा के संस्थापक

स्व. के वासुदेवन पिल्लै

पूर्व समीक्षा समिति

प्रो (डॉ) एन रवींद्रनाथ

डॉ के एम मालती

प्रो(डॉ) आर जयचन्द्रन

प्रो (डॉ) जयश्री एस आर

परामर्श मंडल

डॉ तंकमणि अम्मा एस

डॉ लता पी

डॉ रामचन्द्रन नायर जे

प्रबन्ध संपादक

गोपकुमार एस (अध्यक्ष)

मुख्य संपादक

प्रो डी तंकप्पन नायर

संपादक

डॉ. रंजीत रविशैलम

संपादकीय मंडल

अधिवक्ता मधु बी (मंत्री)

सदानन्दन जी

मुरलीधरन पी पी

प्रो रमणी वी एन

चन्द्रिका कुमारी एस

एल्सी सामुवल

आनन्द कुमार आर एल

प्रभन जे एस

डॉ नेलसन डी

सूचना : लेखकों द्वारा प्रकट किये गये मत उनके अपने हैं। उनसे संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।

लेखकों से निवेदनः

• हिन्दी और इतर भारतीय भाषाएँ, साहित्य, संस्कृति आदि पर लिखी गयी उच्च स्तरीय मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ आमंत्रित हैं। • भाषा, साहित्य, संस्कृति आदि पर आयोजित समारोहों, चर्चाओं, संगोष्ठियों के समाचारों का भी स्वागत है। इन समाचारों को प्रस्तुत करनेवाले का नाम और पूरा पता भी लिख भेजें। • भारतीय भाषाओं से अनूदित कविता, कहानी भी भेजें। उनके साथ मूल लेखक से प्राप्त अधिकार पत्र भी प्रेषित करें। • प्राकाशनार्थ रचनाएँ साफ-साफ अक्षरों में लिखकर अथवा टंकित कर या **डी.टी.पी.** करके **सी.डी.** में भेजें। कृपया कार्बन प्रति न भेजें। • स्वीकृत रचनाएँ यथासमय पत्रिका में प्रकाशित की जाएँगी। • आप ई-मेल द्वारा भी अपनी रचनाएँ भेज सकते हैं। ई-मेल में Microsoft Word or Pagemaker फाइल में भेजिए। ई-मेल आईडी :khpsabha12@gmail.com • अपनी रचना के साथ पूरा पता (जिला, राज्य और पिनकोड सहित), लघु परिचय और फोटो भी भेजें।

संपादक, 'केरल ज्योति', केरल हिन्दी प्रचार सभा,
तिरुवनन्तपुरम-695 014

सभा का मुख्यालय और उसकी गतिविधियाँ

केरल की राजधानी तिरुवनंतपुरम के वषुतक्काड़ में सभा का मुख्यालय स्थित है। सभा के मुख्य परिसर में सभा के संस्थापक मंत्री की पावन स्मृति में श्री वासुदेवन पिल्लै स्मारक हिंदी ग्रंथालय, स्नातकोत्तर अध्ययन अनुसंधान केंद्र, साहित्याचार्य महाविद्यालय, केंद्रीय हिंदी महाविद्यालय, टंकण और आशुलिपि संस्थान, परीक्षा भवन, राष्ट्रवाणी मुद्रणालय, राष्ट्रज्योति पब्लिशेर्स के प्रकाशन अधिकारी का कार्यालय, हिंदी अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय (बी.एड़) और केरल विश्वविद्यालय की मान्यता प्राप्त शोध केंद्र हैं।

विज्ञापन दर (साधारण अंक)

	मासिक	वार्षिक
आवरण पृष्ठ 4 (रंगीन)	रु.2500.00	25,000.00
आवरण पृष्ठ 2 एवं 3 (रंगीन)	रु.2000.00	20,000.00
साधारण पृष्ठ पूरा	रु.1000.00	10,000.00
साधारण पृष्ठ 1/2	रु.600.00	6,000.00
साधारण पृष्ठ 1/4	रु.350.00	3,500.00

एक प्रति का मूल्य रु. 25/-   आजीवन चंदा : रु. 2500/-   वार्षिक चंदा : रु. 250/-

A /c No. 57022786007   IFS Code : SBIN0070033
State Bank of India, Vazhuthacaud Branch

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें : मंत्री, केरल हिन्दी प्रचार सभा, वषुतक्काडु, तिरुवनन्तपुरम-695 014.
दूरभाष:0471-2321378, 2329200, 2329459. फैक्स:0471-2329200 ई-मेल : khpsabha12@gmail.com

दूरभाष : 0471-2321378, 2329200, 2329459
फैक्स : 0471-2329459
मोबाईल : मुख्य संपादक : 9995680289 संपादक : 7898515222

E-mail : khpsabha12@gmail.com
Website : www.keralahindipracharsabha.in

केरलज्योति
सांस्कृतिक जागरण की मासिक पत्रिका
मई 2024

संपादकीय

राष्ट्रभाषा का स्वरूप

राष्ट्रभाषा राष्ट्र में निवास करनेवाले लोगों की नाना भावदशाओं की अभिव्यक्ति का सफलतम माध्यम होती है। राष्ट्रभाषा राष्ट्र की पहचान होती है। महात्मा गाँधीजी ने 1918 में इस बहुभाषी देश की एकता एवं अखंडता की कल्पना कर चेन्नई में हिंदी शिक्षण का कार्य आरंभ किया था। उसमें वहाँ के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ सी राजगोपालाचारीजी का पूर्ण सहयोग मिलता था। स्वाधीनता के संग्राम के दिनों में हिंदी का राष्ट्रव्यापी स्वरूप अधिक सशक्त एवं व्यापक हुआ। वह भारत की प्रतिनिधि भाषा के रूप में विकसित हुई। भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व गाँधीजी के नेतृत्व में हिंदी के प्रति एक सार्वजनिक राय बनी। गाँधीजी बड़े दूरदर्शी थे और उन्होंने हिंदी प्रचार का श्रीगणेश उत्तर से न करके दक्षिण से ही किया था। उनका सबसे बड़ा योगदान यही था कि जिस प्रकार सम्राट अशोक ने अपने पुत्र महेंद्र और पुत्री संघमित्रा को बौद्धधर्म के प्रचार के लिए भेजा था उसी प्रकार उन्होंने अपने पुत्र देवदास गाँधी को हिंदी का प्रचार करने के लिए दक्षिण भारत में भेजा।

राष्ट्रभाषा वस्तुतः उस भाषा को कहते है जिसे राष्ट्र के अधिकांश लोग समझते हैं। मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, बिहार, हरियाणा, राजस्थान, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश जैसे क्षेत्र हिंदी प्रदेश कहलाते हैं। हिंदी के माध्यम से समस्त भारतीय भाषाओं के साहित्य को जब अभिव्यक्ति मिलेगी तभी हिंदी सचमुच राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन होने का गौरव पायेगी। हमें बराबर भारतीय भाषाओं एवं हिंदी की चर्चा में गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर के विचारों को याद रखना अपेक्षित है: "आधुनिक भारत की संस्कृति एक विकसित शतदल कमल के समान है, जिसके एक-एक दल में एक-एक प्रांतीय भाषा और उसकी साहित्य संस्कृति है। किसी एक को मिटा देने से उस कमल की शोभा ही नष्ट हो जाएगी। हम चाहते हैं कि भारत की सब प्रांतीय बोलियाँ जिनमें सुंदर साहित्यसृष्टि हुई है, अपने-अपने घर में (प्रांत में) रानी बनकर रहे, प्रांत के जनगण की हार्दिक चिंता की प्रकाश-भूमि स्वरूप कविता की भाषा होकर रहे और आधुनिक भाषाओं के हार की मध्यमणि हिंदी भारत- भारती होकर विराजती रहे। मेरे विचार से प्रांतीय भाषाओं के पुनरुज्जीवन से राष्ट्रभाषा हिंदी की कुछ क्षति नहीं होगी, उसका उत्कर्ष ही होगा।"

प्रो.डी.तंकप्पन नायर
डॉ.रंजीत रविशैलम

युगे-युगे क्रांति में वैवाहिक परिकल्पना

डॉ.प्रकाश.ए

पीढ़ियों के बीच का संघर्ष तब होता है जब समाज में होनेवाले मूल्यपरिवर्तन को आत्मसात करने में एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी से अपनी असहमति या मानसिक विमुखता खुलकर प्रकट करती है। हरेक पीढ़ी की विवाह-संबन्धी-धारणाएँ अपनी दृष्टि से सही और दूसरों की दृष्टि में नालायक एवं काल-कवलित है।जीवन परिवेश के प्रभावानुसार हरेक की कामनाओं,तमन्नाओं,एवं आर्जुओं के स्वरूप बदलते रहते हैं।

मूलशब्द : क्रांति,परिकल्पना, प्रतिवाद,परधर्म-घृणता,अंधविश्वास,उन्मुक्तप्रेम,

भारत के वैविध्यपूर्ण सामाजिक-जीवन-परिवेश में जन्मी और पली-बढ़ी विभिन्न पीढियों के लोगों के विवाह-संबंधी सोच विचार को प्रस्तुत करनेवाला सामाजिक नाटक है- 'युगे-युगे क्रांति'। नाटककार विष्णु प्रभाकर ने क्रमशः 1875 से लेकर अत्याधुनिक काल तक की पाँच पीढ़ियों के प्रतिनिधित्व करनेवाले पात्रों का परिचय दिया है।इन पात्रों की आपस में न मेल खानेवाली वैवाहिक संबन्धों की संकल्पनाएँ इस नाटक के संघर्ष-तत्त्व को गति देती है। लेखक ने युगानुरूप बदलनेवाली मूल्यसंबन्धी धारणाओं के परस्पर संघर्ष से उपजती असली क्रांति की परिभाषा देने का प्रयास भी किया है। नाटक के प्रारंभ में सूत्रधार और देवीप्रसाद नामक पात्र के संवादों से हमें पता चलता है कि हरेक पीढ़ी स्वयं क्रांतिकारी होने का दावा करती है। ..सब अपने को क्रांतिकारी कहते हैं। लेकिन अपने पुरखों की दृष्टि में ये संस्कृति और सभ्यता के शत्रु हैं और दिशाभ्रष्ट हैं। पूर्व पीढी से अगली पीढ़ी का प्रतिवाद है कि बिना परम्परा से मुक्तिपाए क्रांति का सही अर्थ नहीं समझा जा सकता। इन संवादों के ज़रिए नाटककार ने इस तथ्य का स्पष्टीकरण किया है कि असल में क्रांति का कारण मूल्यों का संघर्ष है। मूल्यसंबन्धी धारणाएँ पीढ़ी दर पीढ़ी बदलती रहती हैं।

मूल्यों के संघर्ष का कारण : 1875 में जब पहली पीढी के कल्याण सिंह की शादी रामकली से होती है तब कुल-रीत के अनुसार दिन के उजाले में जवान लोग अपनी घरवाली का मुख देखना पाप समझता था।ऐसा करना कुलीनता के विरुद्ध बेशर्मी और बेअदबी की बात थी।इसलिए पति को अपनी पत्नि से मिलने केलिए चोरों की तरफ छिपकर आना पड़ता था । कुल-रीत के नाम पर उन्मुक्त प्रेम-व्यवहार पर लगाए गये पर्दा-प्रथा-रूपी निर्बंधन से पुरुष एवं नारी दोनों का दम घुट रहा था।लेकिन बुजुर्गों को बरगलाकर रामकली ने होशियारी से एक रास्ता ढूँढ निकाला और कल्याणसिंह ने रामकली की खुबसूरती को सूरज की रोशनी में देखा और इस साहस के लिए उसे अपने पिता के हाथों से पिटना पड़ा। कल्याण सिंह का दावा है कि अपनी घरवाली का मुख दिन के उजाले में देखकर उसने अपने युग में क्रांतिकारी कदम उठाया है।पच्चीस वर्ष बाद1901 के समय उनके घर पर जब पुत्र प्यारेलाल अपनी शादी की बात करता है तब कल्याण सिंह इस शादी का डटकर विरोध करता है,क्योंकि प्यारेलाल ने सुगनचन्द की विधवा-बेटी कलावती से शादी करने का निश्चय कर लिया है। सनातनी हिन्दू कल्याणसिंह की दृष्टी में विधवा-विवाह निषिद्ध था।

कुल- महिमा एवं शास्त्र का विधान नादान उम्र में विधवा बनी एक जवान लड़की की रक्षा के लिए लालायित पुत्र की सुधारात्मक भावना के विरुद्ध कल्याण सिंह का प्रस्ताव है कि सिरफिरे लोग कहते है कि विधवा का विवाह होना चाहिए। पापी, लम्पट, शास्त्र की बात लांघना चाहता है। धर्म को भ्रष्ट करना चाहता है। जिस समय विधवा - विवाह निषिद्ध था उस समय प्यारेलाल ने एक विधवा को अपनी ज़िन्दगी में लाकर क्रान्तिकारी कदम उठाया। नाटककार ने इस विवाह के माहौल का चित्रण करते वक्तधर्म और शास्त्र के नाम पर सुधारवादी चिंतन के विरुद्ध खड़े कुछ पात्रों के संवादों को शामिल किया है कि यह पाप है।विधवा का विवाह करना शास्त्र और धर्म के विरुद्ध है।जो ऐसा करते हैं वे दुष्ट हैं,शूद्र हैं,नीच और नराधम हैं। इस विवाह का समर्थन करनेवालों का प्रतिवाद है कि यह पाप

नहीं है। पाप तुम लोग करते हो। तुम्हारे घरों में व्यभिचार होता है। तुम्हारी लड़कियाँ विधर्मी भगा ले जाते हैं। वाद-प्रतिवाद के शोरों के बीच विवाह का मांगलिक कर्मकांठ का संचालन करनेवाले पण्डितजी का यह कथन ध्यान देने योग्य है कि जब जब भी सुधार और क्रान्ति का स्वर उठता है,पाखण्डी लोग इसी तरह बाधा देते हैं। लेकिन विश्वास रखिए, वे हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। शोर मचानेवाले कायर होते हैं उनमें क्रान्ति का सामना करने का साहस नहीं होता । कायर कभी सदाचारी नहीं हो सकता। (पृष्ठ-32) यहाँ आस्था और अन्धविश्वास का भेद दिखाना नाटकार का उद्देश्य है। यहाँ पण्डित जी का पात्र धार्मिक-अनुष्ठानों के सुधारात्मक एवं व्यावहारिक पक्ष पर खड़ा है। आस्था और अंधविश्वास में भेद करनेवाली लकीर बहुत पतली होती है। क्षण भर में आस्था अपनी सीमाओं को लाँघकर अंधविश्वास के संसार में प्रवेश कर जाती है। उस समय व्यक्ति विचार को,ज्ञान को,विवेक को,तर्क को झुठलाना शुरू करता है। (हिन्दी का वैश्विक स्वरूप तथा अन्य लेख; अंधविश्वासों से मुक्तिके लिए तर्कशील लहरः महीप सिंह;पृष्ठ-32)

क्राति-चेतना का ह्रास : पुर्खों के धार्मिक मूल्य-चेतना के विरुद्ध खड़े प्यारेलाल की क्रान्ति-चेतना कालान्तर में क्षीण हो जाती है। 1920 के समय जब प्यरेलाल की बेटी शारदा घर की चारदीवारी लाँघकर स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेती है और साड़ी का पल्ला सिर से उतारकर समाज में खुले मुँह में घूमती है तब प्यारेलाल असहिष्णु बन जाता है। पिता की आज्ञा को धिक्कारकर उसने गांधीजी के असहयोग-आन्दोलन के ऐलान का अनुसरण किया। स्त्री को पुरुष के समकक्ष बनाने के उपलक्ष्य में वह भाषण देती है कि यदि मेरी आवाज़ घर की दीवारों को भांदकर अंतःपुरचारिणी मेरी माँओं और बहनों तक पहुँचती है, तो मैं उनसे प्रार्थना करूँगी कि वे अपने को पहचानें। वे शक्तिहैं, शक्तिके मार्ग में घर की चारदिवारी तो क्या, हिमालय जैसे नागाधिराज भी बाधा नहीं दे सकते। युगीन सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना के अनुरूप उभरनेवाली नारी की अस्मिता एवं आत्मचेतना को कैद करनेवाली पुरुषसत्तात्मक मानसिकता की अभिव्यक्ति भी नाटककार ने दी कि स्त्रियाँ घर से बाहर निकलने लगीं।प्रलय के दिन आ गये। असूर्यपश्याएँ थीं,परपुरुष की छाया जिन्हें भ्रष्ट कर देती थीं।......जिस समाज में स्त्रियां स्वेच्छाचारिणी हो जाती हैं, वह समाज नष्ट हो जाता है। नारी की शक्ति को परिसीमित करनेवाले पुरुषोचित न्याय की निरर्थकता यहाँ प्रकट होती है।

पराधीन देश की पराभूत नारी: परतंत्र-देश के सारे धर्मों एवं जातियों की नारियाँ अपनी घरेलू ज़िन्दगी की विडंबनात्मक त्रासदी से गुज़र रही थीं। चारों तरफ से अपने जीवन को निचोड़ रही घरेलू पीड़ा के दमघोटू वातावरण से शारदा शादी की वजह से बच जाती है। पंजाब के खत्री जाति का युवक विमल और अग्रवाल कुल की महिला शारदा दोनों क्रमशः क्षत्रिय और वैश्य वर्ण के हैं, इनका विवाह संपन्न हो जाता है। प्यारेलाल कट्टर आर्यसमाजी है, वे अपनी बेटी की शादी की बात सुनकर अत्यंत क्रुद्ध हो जाते हैं। नाटक का यह प्रसंग हिन्दू-धर्म में मौजूद वर्णवादी मानसिकता का अन्दरूनी विरुद्धता का परिचय देता है। प्यारेलाल अपने को अनुभवी मानते हुए बेटी पर अपना अधिकार थोपना चाहता है,लेकिन विमल के पिता चन्द्रकिशोर बुजुर्ग एवं अनुभवी है इसकी परिपक्वता वे विमल और शारदा को शादी के एकसूत्र में बाँधने में दिखाते हैं।

माँ-बाप का दावा है कि वे अनुभवी हैं इसलिए अपनी संतानों के जीवन से संबन्धित बातों पर निर्णय लेने में उनका विशिष्ट अधिकार होता है। एक अन्दर-नाटकीय पात्र देवीप्रसाद सूत्रधार से कहते हैं कि मैं अपनी लड़की के विवाह को लेकर कितना परेशान हूँ। लेकिन मैं यह कभी नहीं स्वीकार कर सकता कि मेरी आज्ञा के बिना वह कुछ करे। आखिर मैं पिता हूँ। मेरे कुछ कर्तव्य हैं। अधिकार हैं। वे कर्तव्य और अधिकार मुझे इसलिए तो प्राप्त हुए है कि मैं अधिक अनुभवी हूँ। हर बुजुर्ग अनुभवी होता है। यहाँ हर पीढ़ी के लोग अपने को क्रांतिकारी और अनुभवी कहते हैं । सच तो यह है कि अनुभव और क्रान्ति सदा अनबन रहनेवाले दो तत्त्व हैं। क्योंकि एक पीढ़ी के संबन्ध में क्रान्ति का मतलब यह है कि अपनी पूर्व-पीढ़ी में मौजूद स्वानुभूति से रूपायित,पूर्वनिर्धारित धारणाओं एवं पूर्वाग्रहों को तोड़ना या गलत स्थापित करना।इसलिए सूत्रधार का कहना है कि अनुभव स्थापित सत्यों की रक्षा करता है लेकिन क्रान्ति नये सत्यों की खोज करती है।

धार्मिक शुद्धता का दुराग्रह :नाटककार ने 1942 के विवाह के माहौल को दर्शाते हुए शारदा और विमल की

मानसिक स्थिति का चित्रण भी किया है। वे दोनों इसलिए परेशान हैं कि उनका बेटा प्रदीप विधर्मी जैनेट से शादी करना चाहता है। अपनी धार्मिक अस्मिताएँ तोड़ने में वे असमर्थ हो जाते हैं। नाटक की आगे की घटनाएँ प्रियदर्शिनी विजयश्री के इस कथन की पुष्टि देती है कि धारणात्मक चौखटे विकसित करने और मुक्तिकी रणनीति तय करने के क्रम में उन प्रक्रियाओं को समझना जरूरी है जिनके तहत स्त्रीपन और जेंडर आधारित अस्मिताएँ रचने में जाति एक सक्रिय अवयव की भूमिका निभाती है (देवदासी या धार्मिक वेश्या एक पुनर्विचार;पृष्ठ-16) अत्याधुनिक कहे जानेवाला भारत के लोगों की विवाह संबन्धी धारणाएँ आज भी माहाभारत कालीन सोच से रत्ती भर भी आगे नहीं बढ़ी है। विवाह के समय में वर एवं कन्या की वंश की परीक्षा लेने की रीति आज भी चल रही है कि विवाह में सर्वप्रथम यह देखा जाय कि वर एवं कन्या का पितृवंश और मातामह वंश प्रशस्त हो।उत्कृष्ट या समान कुल की कन्या ग्रहण करने से विवाह का फल शुभ होता है। (महाभारतकालीन समाज;सुखमय भट्टाचार्य-पृष्ठ 13) जिस विमल ने जातीयता और प्रान्तीयता की दीवारें तोड़कर देश की स्वतंत्रता के लिए बाहर आनेवाली लड़की शारदा से विवाह किया वही विमल बेटे की शादी की बात सुनकर क्रुद्ध हो जाते हैं । अपने बेटे प्रदीप ने बिना उनको कोई सूचना दिए कोर्ट में जाकर विधर्मी जैनेट से शादी कर ली।अपनी धार्मिक आस्था के बल पर वे कहते हैं कि अपने परिवार और समाज की जो स्थिति है उसको देखते हुए अच्छा होगा कि जैनेट को शुद्ध करके जाह्नवी बना लिया जाए। अपने धर्म की शुद्धता का दावा करनेवाला और दूसरों के धर्म की शुद्धता पर संदेह करनेवाले विमल के मन में आज मानव-प्रेम नहीं बल्कि धार्मिक-आस्था से आच्छादित एवं परधर्म-घृणता पर आधृत झूठा देशप्रेम है । शारदा और विमल गाँधिवादी है ,फिर भी अपने परिवार से संबन्धित बातों पर दोनों जातीयता की संकीर्ण सोच में सिकुड़ हो जाते हैं।शारदा का दुःख है कि क्या उसे कोई और लड़की नहीं मिलती थी? आखिर जैनेट छोटी जाति की लड़की ही तो है।उसके बाबा कोली थे। वह ईसाई बन गए। विमल और शारदा के मन में ऐसी एक धारणा घर कर गयी है कि उन्हें जातीय उच्चता और श्रेष्ठता के ज़रिए समाज में प्रतिष्ठा एवं सम्मान हासिल हो गये हैं। गूढ रूप में अपनी जातीय अस्मिता पर गर्व करनेवाले तथाकथित समाज-सुधारकों के प्रगतिशील-सोच की स्तरीयता की ओर नाटककार ने संकेत किया है।

नई पीढी और नया सोच : जाति की उच्चता और नीचता में विश्वास रखनेवाले माँ-बाप जैनेट को शुद्ध करके जाह्नवी बनाने का सुझाव रखता है। उनसे प्रदीप पूछता है कि आप किस बात में ऊँचे हैं। जैनेट माँ से अधिक पढ़ी-लिखी है,साहसी है।.... शुद्ध हो जाने से क्या आत्मा ऊँची हो जाएगी। शादी के बाद प्रदीप जैनेट के साथ अपने मित्र के घर जाते हैं क्योंकि वे संयुक्तपरिवार के दमघोटू वातावरण में जीना नहीं चाहते हैं। प्रदीप की बहिन सुरेखा भी माँ-बाप के दकियानूसी विचार के विरुद्ध असहमति जताती है कि जैसे सागर के ज्वार को आदेश नहीं दिया जा सकता, वैसे ही नई पीढ़ी की आकांक्षाओं को अपनी सुविधा के अनुसार नहीं मोड़ा जा सकता। नई पीढ़ी समाज के परिवर्तन की निरंतरता को चाहती है। प्रदीप और जैनेट की बेटी अन्विता दीपक नामक युवक से प्रेम करती है, लेकिन स्वीड़ चित्रकार नेल्सन से उसका विवाह तय हो जाता है। प्रदीप के बेटे अनिरुद्ध को 'एक के बाद दूसरा' इस प्रकार कई युवतियों के साथ अनेक प्रेम-संबन्ध होते हैं। बेटी और बेटे को लेकर प्रदीप और जानट की बेबसी और व्यग्रता- ये सब उनके अंदर से गायब होनेवाली क्रान्ति-चेतना की ओर संकेत करते हैं।

अत्याधुनिकता की मूल्य-चेतना : पूर्वजों से निर्धारित सामाजिक एवं धार्मिक अनुष्ठान के पीछे लगने में नई पीढ़ी खुलकर अपनी असहमति प्रकट करती है। उनके संबन्ध में जीवन का मूल्य स्थिर नहीं और वह काल के अनुसार बदलता भी रहता है। नए मूल्यों को आत्मसात करके अपने जीवन को युगानुरूप बदलने में नई पीढ़ी ध्यान देती है। स्थापित मूल्यों के बदले नये मूल्यों की खोज करने की क्षमता केवल जवानी में निहित होती है। उनके संबन्ध में क्रान्ति का अर्थ है कि पुर्खों से निर्णीत मान्यताओं एवं पूर्वाग्रहों से अपने जीवन को मुक्त करना । जीवन को मनोरंजक बनाने की राह में खड़ी सभी बाधाओं से उनके एतराज़ है,चाहे वह धार्मिक हो,सामाजिक हो या पारिवारिक।

राजनीति में हमेशा शासक दल के साथ जुड़े रहे अपने पिता से अनिरुद्ध कह रहा है कि पिताजी सिद्धान्त के नाम पर दल बदलते हैं । बेटा प्रेम के नाम पर संगिनी बदलता है। ....प्रेम हर हालत में राजनीति से बेहतर है...विवाह हमारे समाज में मात्र एक परम्परा का पालन है।..अनुभूति के अभाव में परम्पराएँ सड़ जाती हैं। इन सड़ी-गली परम्पराओं से चिपके रहने से समाज रोगी ही हो सकता है।.... स्त्री के लिए पति अनिवार्य नहीं है, पुरुष अनिवार्य है। नाटककार ने इस तथ्य पर प्रकाश डाला है कि प्रेम स्वतंत्र अभिव्यक्ति है ,यह व्यक्तिगत स्वाभाविक प्रक्रिया है,यह समाज में मौजूद बंधनों और वंचनाओं के प्रति प्रतिरोध का प्रतिबिंब है। वैयक्तिक एवं पारिवारिक जीवन में बदलाव लाने की सोच ही सामाजिक क्रान्ति की पहली सीढ़ी है। चंद्रकला के शब्दों में कहे तो ब्राह्मणीय परम्पराओं व रूढ़ियों पर आधारित भारतीय समाज का सामंती ढांचा अंतरजातीय,अंतरधार्मिक विवाहों का निषेध करता है। लेकिन इन सब अवरोधों के विरुद्ध बगावत करके प्रेम को स्थापित करने की समृद्ध परंपरा भी यहाँ मौजूद रही है। (लेख-जो डूबा सो पार ;समयांतर;पृष्ठ-21; जून 2023) अपनी प्रेमिका रिता को माँ-बाप के सामने इन्ट्रोड्यूस करके अनिरुद्ध कहता है कि विवाह के मंत्र या मजिस्ट्रेट के सर्टिफिकेट से स्त्री-पुरुषों के संबन्धों में कोई अन्तर नहीं पड़ता।....हम युवा है , हमें प्रेम चाहिए। हमें प्रेम के लिए सर्टिफिकेट की आवश्यकता नहीं होती। प्रेम मुक्ति में है,बंधन में नहीं। अत्याधुनिक पीढ़ी की रिता अपने भविष्य एवं संतान के बारे में कहती है कि हम नहीं चाहेंगे तो सन्तान कैसे हो जाएगी? जब चाहेंगे तो उसके वर्तमान पर अपने अतीत को नहीं लादेंगे। अत्याधुनिक पीढ़ी अपने वर्तमान को आगे की पीढ़ी के कंधों पर थोपना नहीं चाहती है, आचार और अनुष्ठान की निरंतरता को बनाए रखने में उन्हें कोई बाध्यता ही नहीं। उनके अनुसार विवाह के संबन्धों के नाम पर किए गये आचारों का पालन करना दकियानूसी बुजुर्गों के हठों से समझौता करना ही है। नर-मादा की सत्ता में विश्वास करनेवाली अत्याधुनिक पीढ़ी विवाह को बन्धन समझती है।नाटक के अंत में विष्णु प्रभाकर अत्यंत कुशलता के साथ इस तथ्य का स्पष्टीकरण भी देता है कि नाटक तो केवल नाटक है, जिसमें आदर्शपूर्ण भाषण सुनाना, नारा लगाना,शेखी बघारना आदि का अभिनय करना आसान है।इन सब को सच्चे जीवन के व्यावहारिक तौर पर उतारने के लिए व्यक्ति में अपनेआप बदलने की क्षमता होनी चाहिए।

निष्कर्ष : काल के अनुरूप अपने सोच-विचार में परिवर्तन लाने के लिए लोग विवश हो जाते हैं। अपने को बेहतर समझना हरेक पीढ़ी की जन्मजात विशेषता है।अपने युग के संस्थागत सोच के विरुद्ध प्रगतिशील कार्रवाई में लगने वाले क्रांतिकारी व्यक्तिको एक स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए पारम्परिक परिकल्पनाओं को परिमार्जित करने की कोशिश अपने परिवार से ही शुरू करनी चाहिए और संबन्धों की दृढ़ता और पारिवारिक जीवन के माधुर्य पर भी ध्यान रखना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ

1. युगे युगे क्रांति; विष्णु प्रभाकर; रजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली- 6 संस्करण-2005
2. हिन्दी का वैश्विक स्वरूप तथा अन्य लेख; डॉ.महीप सिंह; अमन प्रकाशन, श्री बालाजी प्रिंटर्स, नौबस्ता, कानपुर,संस्करण-2014.
3. देवदासी या धार्मिक वेश्या एक पुनर्विचार; प्रियदर्शिनी विजयश्री; अनुवाद-विजय कुमार झा, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नईदिल्ली 110002, संस्करण-2010.
4. महाभारतकालीन समाज; सुखमय भट्टाचार्य; अनुवादिका-पुष्पा जैन, लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-1 संस्करण-2010.
5. समयांतर जून 2023, प्रकाशक-पंकज बिष्ट, दिल्शाद गार्डन दिल्ली-110095.

असिस्टेंट प्रोफसर

सरकारी कॉलेज,कार्यवट्टम, तिरुवनंतपुरम

Mobile- 9446413027

भ्रमभंग उपन्यास और मध्यवर्ग

डॉ. गोपिका.के.के

वर्तमान पीढ़ी के बहुचर्चित उपन्यासकारो में से एक है देवेश ठाकुर। वे सशक्तएवं प्रतिभाधनी साहित्यकार हैं। साहित्य की विविध विधाओं में अपनी प्रतिभा का संस्पर्श करनेवाले देवेश जी के लिए उपन्यास ही अधिक प्रिय है। उनके साथ की गयी मेरी बातचीत में उन्होंने इसकी ओर इशारा किया है "मुझे उपन्यास लिखने में अधिक रुचि है। यह ऐसी विधा है, जिसमें लेखक खुलकर, विस्तार से अपनी और समाज की बात कहता है।"[1] उनके उपन्यासों को पढ़ने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है।

सन् 1975 में प्रकाशित उनका पहला उपन्यास है 'भ्रमभंग'। इसमें निम्न मध्यवर्गीय युवक चंदन की पारिवारिक, सामाजिक और नैतिक विसंगतियों का चित्रण है। इसमें चंदन के द्वारा देवेश जी के ही भोगे यथार्थ का चित्रण हुआ है। एक तरह से यह उनकी आत्मकथा ही है। प्रोफसर की नौकरी मिलकर बडी उम्मीद के साथ चंदन मुंबई महानगर में आता है। अपने परिवार,प्रेयसी और नौकरी के बारे में वह अनेक सपने देखता है। लेकिन वह सपना अधूरा ही रह जाता है। सबसे चंदन को दुख ही दुख मिलता है। परिवार के लिए जीनेवाला चंदन अपनी कमाई का अधिक हिस्सा घर में ही भेजता है और अपनी जिन्दगी बहुत मुश्किल से काटता है। फिर भी परिवारवाले खुश नही होते। "मैंने इन सबको लेकर क्या सोचा था अब एक दरार ही पड़ी देख रहा हूँ। इतना करके भी ये सब आदमी क्यों चाहने लगता है अपने सपने बनाना।"[2]

वैयक्तिक संघर्ष और तनाव का एक मुख्य कारण बढ़ते अभाव ही है। औद्योगिक रूप से संपन्न होने के बावजूद भी महानगर में मध्यवर्ग का जीवन अर्थाभाव से विचलित है। अर्थाभाव के कारण मध्यवर्ग और सामान्यवर्ग को जिन विषम परिस्थितियों से गुज़रना पड़ता है इसका सही चित्र देवेश जी के अनेक उपन्यासों में व्यक्त है।

मध्य वर्गीय परिवार के माता-पिता अपने बड़े लड़कों से यही उम्मीद रखते है कि वह कमाकर अपने परिवार का पालन करें। उन लड़कों के लिए यह बात कभी-कभी आर्थिक बोझ बन जाती है। यही आर्थिक बोझ अभावों, आशंकाओं और मानसिक पीड़ाओं से भरी ज़िंदगी जीने के लिए मध्यावर्गीय बड़े बेटों को मजबूर कर देता है। भ्रमभंग का नायक प्रोफेसर चंदन को इसी मध्यवर्गीय आर्थिक संघर्ष का सामना करना पड़ता है। निम्न-मध्यवर्गीय परिवार में बड़े बेटों का जो हाल रहता है उसका यथार्थ रूप 'भ्रमभंग' के चंदन से ज्ञात होता है। चंदन को अकेले ही अपने और अपने परिवार की आर्थिक समस्या का समाधान ढूँढना पड़ता है। इसलिए शुरू से ही उदार की ज़िंदगी जीने के लिए चंदन मजबूर होता है। सिटी कॉलज मुंबई में नौकरी मिलने पर अपने दोस्तों से पैसे, कपड़े आदि उधार लेकर ही चंदन मुंबई पहुँचता है। नगर में आते ही उसकी जेब काटी जाती है। मुंबई महानगर में अपने गुज़ारे के लिए उसे बहुत तकलीफ उठानी पड़ती है। तनख्वाह का दिन चंदन के लिए बड़ी चिंता का दिन होता है। प्राध्यापकी में उसे 250 ही प्राप्त होता है। जिनमें से 100 रुपए पिताजी को और 50 रुपए भाई को जो देहरादून में पढ़ रहा है भेजता है। बाकी 100 रुपए से अपना जीवन बिताता है। भोजन, किराया, यातायात, किताब का खर्च सब मिलाकर मुंबई जैसे महानगर में उसका जीवन बहुत मुश्किल से

कटता है। मध्यवर्गीय अध्यापक जीवन में चंदन के लिए अपने घर परिवार को चलाना मुश्किल हो जाता है। धन के लिए वह अवकाश के समय ट्यूशन भी लेता है। अपने लिए वक्त ही नहीं निकाल पाता है। अपने सुख का सपना भी वह नहीं देख पाता है।

इतना सब कुछ सहकर पैसा भेजने पर भी परिवारवाले खुश नहीं होते है। उनकी यह गलत धारणा हैं कि शहर में काम करने से खूब पैसा मिलेगा। ऐसी मिथ्या धारणाओं से आर्थिक कठिनाइयाँ भरी चिट्ठियाँ लिखकर पिता चंदन को तमग करते रहते हैं। चिट्ठी नहीं आती तो चंदन को बड़ा आराम मिलता है। महीना शुरू होते ही अगर पिता की चिट्ठी नहीं आई तो उसे बहुत चैन मिलता है। "हर चिट्ठी कोई न कोई माँग लेकर आती है। पहली तारीख। इतना इसको मनीआर्डर करो इतना उसको। इतना पैसा यहाँ इतना वहाँ। तनख्वाह का दिन मेरे लिए सबसे ज़्यादा सोच का दिन होता है।"[3] पिता की चिट्ठियाँ पढ़कर तो चंदन बहुत उदास हो जाता है।

आर्थिक कठिनाई के कारण ही चंदन और उसका दोस्त पालीवाल अपने परिवार को देखने की अत्त्यधिक इच्छा होने पर भी छुट्टियों में गाँव नहीं जा पाते। जायेंगे तो खर्च का बेलैंस बिगड़ जाएगा। पालीवाल को अपनी बहन की शादी के लिए पैसा जमा करना था और चंदन को अपना कर्ज़ चुकाना था, जिसे उसने मुंबई आते समय अपने दोस्तों से लिया था। इस के लिए कॉलज से अवकाश मिलने पर काम की तलाश में वह भटकता था। अपने पाँच साल के प्रोफेसरी में चंदन अपने लिए कुछ नहीं बना पाया। एक अटैची, एक साधारण सी चादर, दो तकिये और किताबें यही उसकी कमाई है।

घर-परिवार को आर्थाभाव से बचाने के लिए ही चंदन एक ऐसी महिला से शादी करता है, जो कामकाजी है। शादी के बाद अधिक पैसा भेजने पर भी घरवाले खुश नहीं होते है। उनकी माँग बढ़ती ही जाती है। बहन के बी.एड. के लिए अलग से दो सौ और परिवार के लिए अलग भेजना पड़ता है। इसके अलावा घर से हमेशा आर्थिक कठिनाइयाँ भरी चिट्ठीयाँ भी आती हैं। इससे चंदन की आर्थिक विषमताएँ और भी बढ़ जाती हैं। परिवारवालों की बढ़ती माँगों से चंदन को लगता है कि एक मध्यवर्गीय व्यक्ति सिर्फ अपनी कमाई से न तो ऊपर उठ सकता है न अपने परिवार को ऊपर उठा सकता है। चंदन को महसूस होता है कि उसके परिवारवालों को सिर्फ उसके धन से ही मतलब है, उन्हें न तो उसके विवाह की ही कोई विशेष प्रसन्नता है न पिता बनने की।

अपनी आर्थिक बोझ को हल्का करने के लिए चंदन अपने पूरे परिवार को मुंबई ले आता है। लेकिन परिवार के आने से उनकी आर्थिक स्थिति और भी कठिन हो जाती है। भाई-बहन अपनी कमाई से ऐश करते हैं और खर्च के लिए घर में कुछ भी नहीं देते हैं। चंदन को अपनी पत्नी और बच्चों की देखभाल भी करनी थी। इसके साथ माँ-बहन की टुच्ची मनोवृत्ति के कारण परिवार की शांति बिगड़ जाती है। उनके लिए चंदन सिर्फ एक पैसा देनेवाला मशीन रह जाता है। चंदन से कोई यह नहीं पूछता कि तुम कैसे हो? तुम्हें क्या पीड़ा है? चंदन को लगता है कि माँ और पिता के पवित्र रिश्ते धन पर आकर टिक गए हैं। अपने ही परिवारवालों के सख्त व्यवहार से चंदन पूरी तरह टूट जाता है। कुंठा, वैमनस्य, आशंका, तनाव आदि से चंदन को दिल का दौरा पड़ जाता है।

संदर्भ सूचि

1. डॉ.देवेश ठाकुर - शोधार्थी के साथ हुई भेटवार्ता।
2. डॉ. देवेश ठाकुर - भ्रमभंग पृ.125
3. डॉ. देवेश ठाकुर - भ्रमभंग पृ.61

सहायक आचार्य
हिंदी विभाग
पय्यन्नूर कॉलेज

‘बदबू’ - में वांछनीय होशोहवास की अभिव्यक्ति

डॉ. प्रदीपा कुमारी.आर

सारांश : शोषण मुक्त समाज सभी सदस्यों के लिए हितकारी होता है। जनतान्त्रिक शासन प्रणाली में जनता मूल्यहीन इकाई बनी रही और पूँजीवादी उद्योगपति निरीह आम मानव को लूटते रहें तो व्यवस्था भ्रष्ट - बदबूदार साबित होती है। यह बदबू का आदी होना और आदमी का निकम्मा होना प्रगति पथ के प्रस्थान में बाधा बन जाएं। अतः परिस्थितियों की पहचान और प्रतिक्रिया की क्षमता वांछनीय होशोहवास का मिसाल है,जो सामाजिक प्रगति के लिए वांछनीय है।

बीज शब्द : जगजाहिर, स्वेच्छाचारी पूँजीपति, भंडा फूटना, झुंझलाहट, वांछनीय होशोहवास

श्रमिक और संघर्षशील आम मानव से श्री शेखर जोशी का लगाव जगजाहिर है।नयी कहानी आंदोलन के दौर में प्रकाशित ‘कोसी का घटवार’ में संकलित उनकी प्रभावी कहानी है ‘बदबू’। ‘अनुभव की प्रामाणिकता’ या भोगा हुआ यथार्थ जैसे तत्युगीन संकरे संकल्प से मुक्तहोकर प्रस्तुत कहानी कारखाने की उम्मीद और नाउम्मीद के बीच असलियत खोजने वाले श्रमिक की जिजीविषा के संघर्ष और मिस्त्री, सर्चमान, फोरमैन आदि स्वेच्छाचारी पूँजीपतियों के सभी करतूतों को लिपिबद्ध करता है। कथा के भीतर कथा का समावेश करके कहानीकार ने इसे अधिक मार्मिक एवं संवेदनशील बना दी है। परिवार और बाल-बच्चे होने की दुविधा के नाते कारखाने के भीतर-बाहर हर पल शोषण के शिकार होने के लिए विवश, व्यवस्था के क्रीतदास, असहाय मजदूरों के जीवन के सही दस्तावेज है बदबू । प्रातः और सायंकाल में बजती दो साईरन के बीच, बंद दरवाजे के भीतर कई असमानताओं का सामना करनेवाले, षड्यंत्र एवं साजिशों का शिकार होनेवाले आम मजदूरों के दुख-दर्द एवं प्रतिरोध की आवाज़ और दबाने के लिए जानेवाले साजिशों का भी पोल खोलना यहाँ सृजनात्मकता की खासियत है।

कारखाने में नए आनेवाला मजदूर के पहले दिन के वर्णन से ‘बदबू’ कहानी का कथ्य शुरू होता है। सभी मानवाधिकारों से वंचित मज़दूर हर पल शोषण के शिकार होते हैं। साजिशें और दमनकारिता से भ्रष्ट-व्यवस्था पर प्रश्न चिह्न लगाकर प्रतिरोध की आवाज़ उठाने के युवा की कोशिश और ताब को तथा कथित बदजात अफसरशाही द्वारा डगमगा देते है। भ्रष्ट-व्यवस्था की बदबू को सहना मज़दूरों की आदत बन गई है। कहानीकार युवा के द्वारा आशावादिता की ओर इशारा करता है कि अंतहीन अन्याय के खिलाफ लड़ने की ताकत उसमें नहीं। लेकिन अन्याय और अनैतिकता से भ्रष्ट सामाजिक व्यवस्था की बदबू को पहचानने की क्षमता अब भी खोई नहीं ।

शोषण से आदी होने से निकम्मे हो जाना - ‘बदबू’ कहानी में श्रमिक वर्ग के जिजविषा के संघर्ष को उकेरा गया है। कारखाने में काम पूरा होने पर हाथों के बदबू मिटाने के लिए वह बार-बार हाथ धोता है पर बदबू से नहीं बचती। तभी एक मजदूर साथी के कहने के अनुसार कोरोसिन तेल में कुहनी-कुहनी हाथ डुबोकर मला तो बाँहों में लिपटी सारी चिकनी कालिख धुल गई लेकिन हाथों से बदबू छूटी नहीं। उसे लगता है कि हाथों पर अदृश्य चींटियाँ रेंग रहे हैं। उसकी परेशानी देखकर वह मजदूर साथी एक किस्सा सुनाकर कहता है कि धीरे-धीरे ये सब आदत बन जाएगी। कारखाने का नियम था कि छुट्टी के समय मजदूरों को कठघरे में अड़ी गिरी हुई लकड़ी को लांघकर बाहर जाना था। युवक इस पर यह क्या आपत्ती है जैसे आत्मगत किया तो वह अनजाने एक बुजुर्ग के कानों पर पडा और उन्होंने ने भी जोड़ा कि ‘धीरे धीरे आदत बन

जाएगा'। अतः लगातार शोषण के शिकार होने पर सब कुछ सहना आदत बन गये हो ,या पूंजीवादी स्वामित्व में ये मजदूर निकम्मे बन गए हैं ।

पूंजीवाद के विरुद्ध गवाही :- कहानी में कारखाने में होनेवाली कई असमानताएें और उसके खिलाफ के श्रमिक संगठन की ओर तानाशाही की दमनकारी संरचना का भी जिक्र किया गया है । एक दिन एक मजदूर बुधन को बीड़ी पीते देखा गया और वह पकड़े जाने के ड़र से जलती बीड़ी को मुँह में ही निगलकर गायब कर दिया। लेकिन उसका भंडा फूट गया और कारखाने की कीमती चीजों को आग जलाने और लाखों को नष्ट होने की संभावना के जुर्म पर बुधन को सभी मजदूरों की सभा में कड़ी तंबीह देकर एक रुपए का जुर्माना अदा करने की घोषणा भी सुनाया गया। तभी मजदूरों के बीच से उस नए युवक की आवाज आयी "..साहब ,आग तो सभी की बीड़ी सिगरट से लगा सकती है ... अफसर साहब तो सारे कारखाने में मुँह में सिगरट दबे धूमते रहते है।"[1] पूंजीवाद के विरुद्ध गवाही देना अपराध समझा जाता है। प्रतिरोध की इस आवाज़ को उद्दंडता समझा गया,और उस आवाज के स्वामी को बार-बार देखकर मुखाकृति को अच्छी तरह समझ कर साहब चला गया।बीड़ी की घटना का असर इतना हुआ कि वह युवक कुछ मजदूरों के दबी-दबाई सहानुभूति और कुछ बुजुर्गों के रूखा व्यवहार का भी पात्र बन गया।

दमनकारी संरचनाः- मजदूरों के महफिल एवं श्रम शक्ति का इकट्ठा होने से ये तानाशाही डरते थे ।हँसी-मज़ाक के लिए भी श्रमिक लोग एक साथ बैठना अफसरशाही के लिए असहनीय थे। अपनी बद हालत की आपसी चर्चा करते हुए दो-चार मजदूर साथी एकजुट होकर बैठे तो बात साहब तक पहुँचती है। साहब के कमरे में वह नए मजदूर को पूछताछ के लिए बुलाया जाता है । तभी उसे मजदूरों के तकलीफों को प्रस्तुत करने का सुअवसर समझकर युवा बिनती करता है , "साहब ,लोगों को मकान की परेशानी होती है ,छुट्टियों का हिसाब नहीं,छोटी-छोटी बातों पर जुर्माना हो जाता है। यही बातें आपसे अर्ज करनी थी। यही वहाँ भी सोच रहे थे।"[2] लेकिन उत्पीड़ितों की इस न्यायोचित अर्जी की ओर घमंड अफसरशाही का व्यवहार अमानवीय था- "तुम बाहरी पार्टियों के एजेंट हो ,ऐसे लोग ही हड़ताल करवाते हैं। मैं एक-एक को सीधा करवा दूंगा। मैं जानता हूँ तुम्हारे गुट में कौन -कौन है। आइंदा ऐसी बातें मैं सुनना नहीं चाहता।"[3] यह वक्तव्य श्रमिकों की संघ शक्तिकी प्रतिक्रिया एवं प्रतिरोध की आवाज को दबानेवाली दमनकारी संरचना की रणनीति की उद्घोषणा है ।

तलाशी के नाम पर मानसिक शक्ति को हटाने की कूट नीति - कारखाने में श्रमिक से चोर जैसे व्यवहार करते थे। काम पूरा होने पर मजदूरों को तलाशी के लिए पंक्तिमें खड़ा करके अपनी थैली और डब्बा खोल करके दिखाना था। फिर शारीरिक तलाशी के लिए दोनों हाथ उठाकर रहना पड़ता था, जल्दी घर पहुंचने की इच्छा से पंक्तिमें कहीं कोई झुंझलाहट हो जाती तो सर्च करनेवाले फोरमैन भद्दा अशील बताते थे ।लेकिन कोई मजदूर उन्हें कोसते नहीं, अतः किसी को शिकायत करने की ताकत नहीं । इस शारीरिक तलाशी के बाद भी मजदूरों को कठघरे से उछल-कूदकर बाहर आना पड़ते थे ।मजदूर अपने आप कहते थे "सालों का शक रहता है कि हम टांगों के साथ कुछ बांधे ले जा रहे है हो,इसलिए अब यह उछल-कूद का खेल कराने लगे हो।"[4] लेकिन तलाशी के नाम पर मानसिक शक्तिको हटाने की कूट नीति के अदृश्य कड़ियों से आबद्ध मजदूर खुले तौर पर प्रतिरोध की आवाज नहीं उठा सकते थे। गेट से बाहर निकलने पर उन्हें बंद कोठरी से निकलकर खुली हवा में चला आना प्रतीत होते थे।

वर्ग बोध को हराने के लिए पूँजी की साजिश : कारखाने के सारे नियम सिर्फ मज़दूरों पर थोपने पर प्रतिक्रिया के रूप में वक्तव्य देने के नाते वह युवा विशेष रूप से उद्योगकर्मी पूंजीपति के शोषण के पात्र बन गए। छुट्टी के समय घर जाने के लिए थैली कंधे में डाला तो भारी लगा, थैली में दुपहर की रोटी लानेवाली डब्बा ही थी, जो खाली था। लेकिन अधिक भारी लगने के कारण डब्बा खुलकर देखा तो उसमें एक कागज में कुछ पुरजे लिपटे रखे थे। युवक को

व्यवस्था का कुचक्र और आपत्ति महसूस हुआ,फिर संयत्त चित्त होकर उसने कागज़ में लिपटे उन सामग्रियों को सामनेवाले अलमारी में डाल दिया और शारीरिक तलाशी के लिए उपस्थित हुआ। तभी तक निरीक्षक होकर वहाँ खड़े फोरमैन खुद हठ करके उस युवा की तलाशी करने लगा। तलाशी के बाद साजिश असफल होने की वजह से वह बहुत निराश दीख पड़ा।

प्रतिक्रिया की आवाज को अकेले रहा देने की कूटनीति :-कहानी में कारखाने के बाहर तानाशाही द्वारा किये गए छलों का पोल खोलते है। प्रातः काल साइरण बजने पर भी कारखाने में प्रवेश करने के लिए आधा घंटा मजदूरों को दिए जाते थे । लेकिन उस दिन वर्क्स मैनेजर के साइन करने के बाद ही गेट बंद करवा दिया। वह युवा गेट से बीस-तीस गज की दूरी पर ही था। परंतु वहाँ पहुँचने से पहले ही चौकीदार ने गेट बंध कर दिया। अभी बीस पच्चीस आदमी हाफते हुए चले आ रहे थे। लेकिन वे सभी वंचित हो गाए कि आधा घंटा लेट मार्क करके उनके छह -आठ आने का वेतन कम कर दिया गया ।कारखाने में होनेवाले अवांछनीय कार्यों के प्रति प्रतिक्रिया उठाने के कारण वह युवा ही नहीं कई मजदूरों को पीड़ा झेलना पड़ा तो युवा भीड़ में अकेला हो गया।अफसरशाही की करतूतों से निरीह मजदूर डरते थे। "घोड़े के पीछे,अफसर के आगे कौन समझदार आएगा।एक आदमी के कारण इतने लोगों का नुकसान हो गया, ऐसे लड़ने-भिड़ने को ही जवानी बना रखी हो तो आदमी दंगल करे, अखाड़े में जाए। नौकरी में तो नौकर की ही तरह रहना चाहिए।"[5] यही वहाँ के बुजुर्ग मजदूरों की प्रतिक्रिया थी। हर समय धीरे धीरे आदत हो जाएगी - यही आश्वासन वे देते रहे ।

वांछनीय होशोहवास - प्रातःकाल के साइरण से अंतिम साइरण तक यंत्रवत काम करना उनकी नियती बन गयी, अवसाद भरी ज़िंदगी में बिना प्रतिरोध के गुलाम जैसे काम करना सभी मजदूर जैसे उस युवा की भी आदत बन गयी। कहानी के अंत में हाथ धोने के लिए साबुन पानी नहीं मिली तो सिर्फ मिट्टी से हाथ धोता है।हाथ से बदबू का अहसास न होने से वह परेशान होता है। वह बार-बार हाथ सूँघता है और डरता है कि कहीं वह भी इसका आदी तो नहीं हो गया ! लेकिन महसूस होता है कि हाथों से अब भी कैरोसीन की बदबू आ रही है। हाथों की यह बदबू जिजीविषा की तलाश ही है। बदबू होने की पहचान श्रमिक की जागृत चेतना की खुशबू है,अस्मिता का निशान एवं परिस्थिति को पहचानने की क्षमता है। विश्वनाथ त्रिपाठी इस कहानी के संदर्भ में लिखते हैं बदबू के एहसास का मर जाना और यह एहसास कि बदबू का बोध नहीं रह गया है, वैयक्तिक्र और उससे कहीं बढ़कर सामाजिक ऐतिहासिक शून्यबोध का रहना और मिट जाना है चेतन और अचेतन हो जाने का अंतर है।"[6]

अस्तित्व के लिए संघर्ष करते श्रमिकों के किसी भी प्रकार के प्रतिरोध को दबानेवाली पूंजीवादी शोषक संस्कृति की विभिन्न साजिशों को कहानी में उकेरा गया है। 'बदबू' असल में समाज में फैलते भ्रष्टाचार ही है। भ्रष्टाचारियों के गढ़ शक्ति के बीच आम मजदूरों की आवाज़ कुचली जाती है।समाज के सकारात्मक परिवर्तन की ओर सजग होकर युग द्रष्टा साहित्यकार को अपना सृजनात्मक दायित्व निभाना है। इस लिहाज से मूल्यांकन करने पर 'बदबू' कहानी को क्रांति की चिंगारी को जिंदा रखने की कोशिश का सार्थक प्रयास के रूप में रेखांकित कर सकता है ।

संदर्भ ग्रंथ :-

1) बदबू- कोसी का घटवार शेखर जोशी,पृ-139, नया साहित्य प्रकाशन,इलाहाबाद ,प्र.1958
2) वही, पृ -142
3) वही, पृ -142
4) वही, पृ -139
5) वही, पृ -145
6) आजकल पत्रिका नई दिल्ली (अंक सितम्बर 2022) लेखःरचनाकार शेखरः विश्वनाथ त्रिपाठी, पृष्ठ संख्या 130

अस्सोसियेट प्रोफेसर,
गवेनमेंट के एन एम आर्ट्स &साइन्स कॉलेज,
काँजीरमकुलम, तिरुवनंतपुरम

आधुनिक हिंदी टेलीविज़न विज्ञापनों में महिला शाक्तीकरण का प्रतिष्ठान : एक गुणात्मक शोध

डॉ. अलका मकवान

परिचयः टेलीविज़न विज्ञापन सार्वजनिक धारणाओं को आकार देने और सामाजिक मूल्यों को प्रतिबिंबित करने का एक प्रभावशाली माध्यम बन गए हैं, जिससे वे गुणात्मक शोध के लिए एक दिलचस्प विषय बन गए हैं। पिछले कुछ वर्षों में, इन विज्ञापनों में महिलाओं को चित्रित करने के तरीके में एक उल्लेखनीय बदलाव देखा गया है, जो पारंपरिक रूढ़िवादिता से हटकर ऐसे आख्यानों की ओर बढ़ रहा है जो लैंगिक मानदंडों को सशक्त और चुनौती देते हैं। इस गुणात्मक शोध पत्र का उद्देश्य भारतीय टेलीविजन पर विशेष ध्यान देने के साथ समकालीन टेलीविजन विज्ञापनों में महिला सशक्तिकरण के चित्रण पर गहराई से विचार करना है। इसका इरादा महिला सशक्तीकरण को बढ़ावा देने के लिए विज्ञापनदाताओं द्वारा उपयोग की जाने वाली रणनीतियों और संदेशों का पता लगाना है और यह निर्धारित करना है कि ये विज्ञापन किस हद तक भारतीय समाज में लैंगिक भूमिकाओं और समानता पर विकसित चर्चा को प्रतिबिंबित और योगदान करते हैं। इसके अलावा, यह शोध भारतीय टेलीविजन विज्ञापन के अनूठे संदर्भ में अंतर्दृष्टि प्रदान करने का प्रयास करता है, जहाँ सांस्कृतिक बारीकियाँ और सामाजिक मूल्य कथाओं को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

हाल के वर्षों में, भारतीय टेलीविजन पर महिला सशक्तिकरण की वकालत करने वाले विज्ञापनों में वृद्धि देखी गई है। इन विज्ञापनों में अक्सर महिलाओं को सामाजिक मानदंडों को तोड़ते हुए और निडर होकर अपनी आकांक्षाओं को पूरा करते हुए दिखाया जाता है (किलबोर्न, जे. 2015)। उदाहरण के लिए, बैंकिंग और वित्त जैसे विभिन्न उद्योगों के विज्ञापन अक्सर महिलाओं को आत्मविश्वास से भरी निर्णय लेने वाली महिलाओं के रूप में चित्रित करते हैं जो आर्थिक रूप से स्वतंत्र हैं। इसके अलावा, शिक्षा क्षेत्र के विज्ञापन महिलाओं की उच्च शिक्षा और पेशेवर करियर की खोज को उजागर करते हैं, आत्म-संतुष्टि के महत्व पर जोर देते हैं। कुछ भारतीय विज्ञापन महिलाओं में शारीरिक सकारात्मकता और आत्मविश्वास को बढ़ावा देकर शारीरिक छवि की रूढ़िवादिता को भी चुनौती देते हैं। इसके अतिरिक्त, ब्रांडों ने घरेलू हिंसा जागरूकता और लैंगिक समानता जैसे महिला सशक्तीकरण से संबंधित सामाजिक कारणों के साथ खुद को जोड़ा है, जिससे इन मुद्दों के प्रति उनकी प्रतिबद्धता पर और जोर दिया गया है।

विशेष रूप से, भारत का अनोखा सांस्कृतिक संदर्भ टेलीविजन विज्ञापनों में महिलाओं के चित्रण को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारतीय समाज को परंपराओं और मूल्यों की समृद्ध टेपेस्ट्री की विशेषता है, और ये कारक अक्सर विज्ञापन कथाओं में परिलक्षित होते हैं। कुछ विज्ञापनों में महिलाओं को पारंपरिक भूमिकाओं में उत्कृष्ट प्रदर्शन करते हुए दिखाया जा सकता है और साथ ही उनके सशक्तिकरण पर भी जोर दिया जा सकता है। भारतीय टेलीविजन विज्ञापनों में क्षेत्रीय भाषाओं और सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक विषयों का उपयोग प्रचलित है, जिससे यह सुनिश्चित होता है कि विज्ञापन देश भर के विविध दर्शकों के बीच गूंजें। इसके अलावा, हिंदी विज्ञापन, जो एक विशाल दर्शक वर्ग तक पहुँचते हैं, अक्सर महिला सशक्तिकरण के संदेश देने के लिए सम्मोहक कहानी और भावनात्मक आख्यानों का लाभ उठाते हैं (ग्रायर, एस.ए., और ब्रायंट, सी. 2005)। यह गुणात्मक शोध पत्र भारतीय टेलीविजन विज्ञापनों में संस्कृति, मूल्यों और सशक्तिकरण के इस जटिल अंतर्संबंध को गहराई से समझने का प्रयास करता है ताकि यह व्यापक समझ प्रदान की जा सके कि ये विज्ञापन देश में महिला सशक्तिकरण की उभरती गतिशीलता में कैसे योगदान करते हैं और उसे प्रतिबिंबित करते हैं।

शोध का सैद्धांतिक आधार : विज्ञापनों में लिंग प्रतिनिधित्व और महिला सशक्तिकरण पर शोध करने के लिए एक

अच्छी तरह से परिभाषित वैचारिक ढाँचा आवश्यक है। रूपरेखा उस मचान के रूप में कार्य करती है जिस पर अनुसंधान उद्देश्यों को संरचित और विश्लेषण किया जाता है। इसके मूल में, इस ढांचे में लिंग प्रतिनिधित्व की निरंतरता शामिल है, जिसमें एक छोर महिलाओं के लिए पारंपरिक रूढ़िवादिता और भूमिकाओं की विशेषता है और दूसरा छोर महिलाओं को सशक्तऔर आत्मविश्वासी व्यक्तियों के रूप में चित्रित करता है जो पारंपरिक मानदंडों को चुनौती देते हैं। इस सातत्य में, दृश्य और कथात्मक तत्व विज्ञापन के संदेश को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं (बाउर, टी., और आर्ट्स, एन. 2019)। इसके अतिरिक्त रूपरेखा क्षेत्रीय और वैश्विक दृष्टिकोण के महत्व पर प्रकाश डालते हुए, लिंग प्रतिनिधित्व पर सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ के प्रभाव को स्वीकार करती है।

वैचारिक ढांचे के भीतर कई कारक करीब से जांच के लायक हैं। कैमरा एंगल, प्रकाश व्यवस्था, पोशाक और चेहरे के भाव सहित दृश्य तत्व, विज्ञापनों में महिलाओं को चित्रित करने में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। संवाद, चरित्र अंतःक्रिया और कथानक विकास जैसे कथात्मक तत्व, लैंगिक भूमिकाओं और सशक्तिकरण से संबंधित संदेश देने के लिए दृश्यों के साथ मिलकर काम करते हैं। सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ इन चित्रणों के लिए पृष्ठभूमि प्रदान करते हैं, क्योंकि सांस्कृतिक मूल्य, परंपराएँ और मानदंड विज्ञापनों में महिलाओं के चित्रण को आकार देते हैं। इसके अलावा, विज्ञापन द्वारा उत्पन्न भावनात्मक अपील एक शक्तिशाली तंत्र है जो दर्शकों को भावनात्मक स्तर पर संलग्न करती है, संभावित रूप से सशक्तिकरण विषयों को मजबूत करती है (कर्टनी, ए.ई., और लॉकरेट्ज़, एस.डब्ल्यू. 1971)।

अंततः यह शोध लिंग मानदंडों और महिला सशक्तिकरण पर विज्ञापनों के प्रभाव का मूल्यांकन करना चाहता है। दर्शकों के स्वागत का आकलन करके और सशक्तिकरण से संबंधित मैट्रिक्स पर विचार करके, जैसे आत्म-सम्मान में बदलाव या लिंग भूमिकाओं के प्रति दृष्टिकोण, अध्ययन का उद्देश्य सकारात्मक परिवर्तन को बढ़ावा देने में विज्ञापन की प्रभावशीलता का आकलन करना है। इसके अलावा, सांस्कृतिक अनुकूलन और स्थानीयकरण ढांचे के आवश्यक पहलू हैं, क्योंकि विज्ञापन अक्सर विशिष्ट सांस्कृतिक संदर्भों के अनुकूल होते हैं। अंत में, ब्रांडिंग और उत्पाद एकीकरण की भूमिका को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है, क्योंकि यह प्रचारित किए जा रहे उत्पाद या सेवा से जुड़े सशक्तिकरण की धारणा को प्रभावित कर सकता है। इस व्यापक वैचारिक ढांचे के माध्यम से, शोध विज्ञापनों, लिंग प्रतिनिधित्व और महिला सशक्तिकरण के बीच गतिशील संबंधों पर प्रकाश डालने का प्रयास करता है।

शोध के उद्देश्य : महिला सशक्तिकरण पर विशेष ध्यान देने वाले इस शोध के उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

चयनित विज्ञापन में महिलाओं के चित्रण का विश्लेषण करना, सशक्तिकरण विषयों के संदर्भ में उनकी भूमिकाओं, विशेषताओं और बातचीत की जांच करना।

विज्ञापन की भावनात्मक अपील का आकलन करना, विशेष रूप से इस संदर्भ में कि यह किस प्रकार महिला सशक्तिकरण, आत्मविश्वास और स्वतंत्रता की भावना व्यक्तकरता है। महिला सशक्तिकरण से संबंधित संदेशों को सुदृढ़ करने में उनकी भूमिका को समझने के लिए कैमरा कोण, प्रकाश व्यवस्था, संवाद और गैर-मौखिक संकेतों सहित विज्ञापन में नियोजित दृश्य और कथा तकनीकों की जांच करना। दृष्टिकोण में किसी भी संभावित सकारात्मक बदलाव पर ध्यान देने के साथ, महिलाओं की भूमिकाओं, सशक्तिकरण और सामाजिक मानदंडों के बारे में दर्शकों की धारणाओं पर विज्ञापन के प्रभाव का मूल्यांकन करना।

इन उद्देश्यों का सामूहिक लक्ष्य लिंग प्रतिनिधित्व और महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा देने पर विशेष जोर देने के साथ चुने गए विज्ञापन के गुणात्मक विश्लेषण का मार्गदर्शन करना है।

शोध क्रियाविधि : आधुनिक टेलीविजन विज्ञापनों में महिला सशक्तिकरण का प्रतिष्ठान पर शोध का माध्यमिक लक्ष्य जेंडर प्रतिनिधिता और महिलाओं के सशक्तिकरण के विषय में आधुनिक टेलीविजन विज्ञापनों का विश्लेषण करना है। इस अनुसंधान का एक महत्वपूर्ण पहलू है कि यह इस विषय पर गहरा अध्ययन करता है और महिलाओं

के सशक्तिकरण के संदेश को समझने और प्रोत्साहित करने के लिए मार्गदर्शन प्रदान करता है। यह अनुसंधान जेंडर और मीडिया के बीच के जटिल संबंध को समझने का प्रयास करता है। इस शोध की शोध पद्धति इस प्रकार है ।

1.जेंडर सशक्तिकरण दिखाने वाले विज्ञापन का चयन : अनुसंधान का आदान-प्रदान विज्ञापनों के सावधानीपूर्वक चयन से हुआ, जिन्होंने जेंडर सशक्तिकरण के विषयों को प्रस्तुत किया था। सुनिश्चित किया गया कि विविध प्रकार के विज्ञापन चुने गए, जो महिलाओं को सशक्तिकरण की भूमिकाओं में दिखाते हैं, ताकि एक व्यापक विश्लेषण सुनिश्चित किया जा सके।

2. उद्देश्यों को ध्यान में रखकर सामग्री विश्लेषण : चयनित विज्ञापनों पर सामग्री विश्लेषण किया गया, जिसमें अनुसंधान के उद्देश्यों को ध्यान में रखकर विश्लेषण किया गया। सामग्री की व्यवस्थित जाँच की गई, जैसे कि महिलाओं की प्रतिनिधित्व, उनकी भूमिकाएँ, विशेषताएँ, और सशक्तिकरण थीम्स के संदर्भ में उनके दिखाए गए कामकाज का।

3. विशेषज्ञ द्वारा सामग्री विश्लेषण की प्रमाणीकरण : सामग्री विश्लेषण के परिणामों को जेंडर अध्ययन और मीडिया विश्लेषण के क्षेत्र में विशेषज्ञों द्वारा प्रमाणित किया गया। इनकी विशेषज्ञता का उपयोग करने से विश्लेषण के परिणामों की सटीकता और विश्वसनीयता सुनिश्चित की गई।

4. निष्कर्षण प्राप्त करना : सामग्री विश्लेषण और विशेषज्ञ प्रमाणीकरण के आधार पर, चयनित विज्ञापनों में जेंडर सशक्तिकरण की प्रतिष्ठापन के संदर्भ में मुख्य निष्कर्षण निकाले गए। इन निष्कर्षणों में पैटर्न, प्रवृत्तियाँ, और महत्वपूर्ण दृष्टिकोणों को शामिल किया गया।

5. मीडिया में जेंडर सशक्तिकरण के प्रोजेक्शन के लिए मार्गदर्शन प्रदान करना : अनुसंधान के परिणामों के आधार पर, अध्ययन ने मीडिया में जेंडर सशक्तिकरण की प्रस्तुति के लिए क्रियाशील मार्गदर्शन और सिफारिशें प्रदान कीं। इन मार्गदर्शनों का उद्देश्य टेलीविजन विज्ञापनों में महिलाओं की सकारात्मक और सशक्तदिखाव को बढ़ावा देना था।

यह अनुसंधान मॉडल एक स्पष्ट दृष्टिकोण प्रदान करता है, जिससे आधुनिक टेलीविजन विज्ञापनों में जेंडर सशक्तिकरण की प्रतिनिधित्व का विश्लेषण किया जा सकता है, साथ ही विशेषज्ञ प्रमाणीकरण और दर्शक प्रतिक्रिया के माध्यम से प्राप्त डेटा की मान्यता और विश्वसनीयता सुनिश्चित की जाती है। इसके साथ ही, यह विश्लेषण के परिणामों का उपयोग करके मीडिया में जेंडर सशक्तिकरण की भविष्य की प्रस्तुति पर प्रभाव डालने के लिए दिशा-निर्देश प्रदान करता है।

महिला सशक्तिकरण के सन्दर्भ में एक विज्ञापन का नमूने के तौर पर विश्लेषण

शोधकर्ता ने टीवी पर प्रसारित 10 अलग-अलग विज्ञापनों का चयन किया है जिसमें साबुन, आभूषण, खाना पकाने की वस्तु, पोशाक की वस्तु, बीमा आदि उत्पादों की विस्तृत श्रृंखला शामिल है। इन उत्पादों के सभी विज्ञापनों का सामग्री विश्लेषण पद्धति का उपयोग करके विश्लेषण किया गया था। जिसमें से तनिष्क आभूषण का एक विश्लेषण यहाँ नमूने के तौर पर प्रस्तुत है।

विज्ञापन विश्लेषण:

पात्र और भूमिकाएँ:

महिलाः केंद्रीय पात्र एक युवा महिला है, जो एक बहू है, जो उत्सव के अवसर के लिए पारंपरिक रूप से तैयार होती है। उसे आत्मविश्वासी और अभिव्यंजक के रूप में दर्शाया गया है।

पुरुषः पति को महिला की पसंद के समर्थक और सराहना करने वाले के रूप में चित्रित किया गया है। वह उसकी हरकतों और हाव-भाव पर ध्यान देता है।

दृश्य प्रतिनिधित्व: विज्ञापन में सभा के दौरान परिवार के विभिन्न सदस्यों के साथ महिला की बातचीत को दिखाया गया है। उसे बातचीत में व्यस्त, हँसते हुए और उत्सवों में सक्रिय रूप से भाग लेते हुए दिखाया गया है।

ध्यान महिला की कलाई पर जाता है, जहाँ वह तनिष्क आभूषण का एक टुकड़ा पहनती है।

कथा और संवादः परिवार के सदस्यों के साथ महिला की बातचीत उत्सव के एक सक्रिय और अभिन्न अंग के रूप में उसकी भूमिका को उजागर करती है। आभूषणों के संबंध में कोई सीधा संवाद नहीं है, लेकिन महिला के हाव-भाव और आत्मविश्वास से पता चलता है कि इसे पहनने में खुशी और गर्व की भावना है।

भावनात्मक अपीलः विज्ञापन की भावनात्मक अपील पारिवारिक एकजुटता और महिला के अपनेपन और खुशी की भावना के चित्रण में निहित है। महिलाओं की बातचीत से सकारात्मक भावनाएँ पैदा होती हैं, जिससे खुशी और एकता का माहौल बनता है।

लिंग भूमिकाएँ और सशक्तिकरणः विज्ञापन पारंपरिक लिंग भूमिकाओं से एक सूक्ष्म बदलाव प्रस्तुत करता है। बातचीत में महिला की सक्रिय भागीदारी और उसकी जीवंत अभिव्यक्तियाँ उस निष्क्रिय भूमिका को चुनौती देती हैं जो अक्सर पारिवारिक समारोहों में महिलाओं को दी जाती है।

पति की सहायक अभिव्यक्तियाँ अधिक समान साझेदारी का सुझाव देती हैं, क्योंकि वह महिला के कार्यों और विकल्पों की सराहना करता है।

सांस्कृतिक मानदंडोंः

उत्सव की सेटिंग सांस्कृतिक मानदंडों के अनुरूप होती है जहां पारिवारिक समारोहों का महत्व होता है। महिलाओं की पारंपरिक पोशाक सांस्कृतिक मूल्यों का सम्मान करती है जबकि उनकी सक्रिय भागीदारी एक आधुनिक स्पर्श जोड़ती है।

आभूषण प्रतीकवादः तनिष्क आभूषण केंद्रीय फोकस नहीं है, लेकिन महिला की कलाई पर इसकी उपस्थिति का मतलब है कि यह उसकी पहचान का हिस्सा है और उसके आत्मविश्वास को बढ़ाता है।

विश्लेषण सारांशः तनिष्क विज्ञापन एक युवा महिला को चित्रित करके पारंपरिक लिंग भूमिकाओं को चुनौती देता है जो निष्क्रिय रूढ़ीवादिता के विपरीत, पारिवारिक उत्सव में सक्रिय रूप से भाग लेती है। पति की सहायक भूमिका अधिक समान भागीदारी का संकेत देती है। जबकि फोकस आभूषण ब्रांड पर है, विज्ञापन बड़ी चतुराई से आभूषणों को महिला के आत्मविश्वास और सशक्तिकरण से जोड़ता है। यह चित्रण सांस्कृतिक मूल्यों और आधुनिक आदर्शों के मिश्रण को दर्शाता है, जो एकता और अपनेपन की भावना को मजबूत करता है।

विश्लेषण की इस संरचना का अनुसरण करते हुए, 9 से अधिक विज्ञापनों का भी विश्लेषण किया गया।

निष्कर्षों पर चर्चा : समकालीन विज्ञापन उद्योग महिला सशक्तिकरण के लिए एक गतिशील शक्तिके रूप में उभरा है, जैसा कि हमारे सामग्री विश्लेषण के निष्कर्षों में परिलक्षित होता है। यह स्पष्ट है कि उद्योग एक परिवर्तनकारी यात्रा पर है, जो सचेत रूप से महिलाओं की अपनी कहानियों और चित्रण को फिर से परिभाषित कर रहा है। सबसे उल्लेखनीय बदलावों में से एक महिलाओं की बढ़ी हुई दृश्यता है, जिन्हें अब परिधि पर नहीं रखा गया है बल्कि विज्ञापनों में सबसे आगे रखा गया है। महिलाओं की भूमिकाओं, अनुभवों और उपलब्धियों पर यह विचारशील स्पॉटलाइट जीवन के सभी पहलुओं में उनकी सक्रिय भागीदारी के बारे में एक शक्तिशाली संदेश भेजता है (गिल, आर. 2008) । यह पारंपरिक लिंग मानदंडों की सीमाओं से मुक्त होने के लिए उद्योग की प्रतिबद्धता को दर्शाता है, जिसने लंबे समय से मीडिया में महिलाओं के प्रतिनिधित्व में बाधा उत्पन्न की है।

इसके अलावा, उद्योग सक्रिय रूप से रूढ़िवादिता को चुनौती दे रहा है, महिलाओं को मजबूत, आत्मविश्वासी और मुखर व्यक्तियों के रूप में चित्रित करता है जो पारंपरिक अपेक्षाओं को चुनौती देती हैं। यह चित्रण महिलाओं की क्षमताओं को स्वीकार करने और उनका जश्न मनाने की दिशा में व्यापक सांस्कृतिक बदलाव के साथ संरेखित है। विज्ञापन शिक्षा के महत्व पर भी जोर देते हैं, महिलाओं को विभिन्न क्षेत्रों में ज्ञान और विशेषज्ञता प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं (पेनालोज़ा, एल., और प्राइस, एल. एल. 1993)। ऐसा करके, उद्योग न केवल व्यक्तिगत महिलाओं

का उत्थान करता है, बल्कि विभिन्न सामाजिक संदर्भों में महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा देकर लैंगिक समानता के उद्देश्य को भी आगे बढ़ाता है।

इसके अलावा, ये विज्ञापन अक्सर सहायक पारिवारिक संरचनाओं और सामुदायिक भागीदारी पर प्रकाश डालते हैं। यह महिलाओं के पोषण और उन्हें सशक्तबनाने में परिवारों और समुदायों द्वारा निभाई जाने वाली महत्वपूर्ण भूमिकाओं के बारे में उद्योग की मान्यता को इंगित करता है। इसके अलावा, कहानियाँ अक्सर महिलाओं को नेता, परिवर्तन-निर्माता और रोल मॉडल के रूप में चित्रित करती हैं, जिससे अन्य महिलाओं को अपनी आकांक्षाओं को आगे बढ़ाने और अपनी पहचान पर जोर देने के लिए प्रेरणा मिलती है। विज्ञापन उद्योग में यह पुनर्निर्देशन व्यापक सामाजिक मूल्यों को दर्शाता है, जो महिलाओं की ताकत, लचीलेपन और अधिक न्यायसंगत और समावेशी भविष्य को आकार देने में नेतृत्व करने की क्षमता में विश्वास की पुष्टि करता है (स्टर्न, बी.बी. 1999)।

निष्कर्ष : अंत में, यह शोध पत्र एक व्यापक और व्यावहारिक विश्लेषण प्रदान करता है कि कैसे विज्ञापन उद्योग तेजी से महिला सशक्तिकरण, रूढ़िवादिता को चुनौती देने और लैंगिक समानता को बढ़ावा देने पर ध्यान केंद्रित कर रहा है। जैसे ही हम इस अध्ययन का निष्कर्ष निकालते हैं, यह स्वीकार करना आवश्यक है कि यहाँ किया गया शोध आगे की खोज के लिए रोमांचक रास्ते खोलता है। विज्ञापन के भीतर विकसित हो रही गतिशीलता, अपने परिवर्तनकारी आख्यानों और महिलाओं के विविध प्रतिनिधित्व के साथ, विद्वानों, विज्ञापनदाताओं और नीति निर्माताओं को इस क्षेत्र में गहराई से उतरने के लिए आमंत्रित करती है।

भविष्य के शोध सामाजिक धारणाओं, व्यवहारों और दृष्टिकोणों पर ऐसे सशक्तविज्ञापनों के प्रभाव का पता लगा सकते हैं। यह समझना कि ये चित्रण दर्शकों के दृष्टिकोण को कैसे प्रभावित करते हैं और वास्तविक दुनिया में बदलाव में योगदान करते हैं, अन्वेषण के लिए एक आवश्यक अवसर है। इसके अतिरिक्त, महिला सशक्तिकरण के संदेश देने के लिए विज्ञापनदाताओं द्वारा अपनाई गई रणनीतियों और रचनात्मक तकनीकों की गहन जाँच से विज्ञापन की कला में मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्राप्त होगी।

संदर्भ

किलबोर्न, जे. (2015)। 'किलिंग अस सॉफ्टली 4: विज्ञापन में महिलाओं की छवि' वृत्तचित्र। मीडिया एजुकेशन फाउंडेशन।

ग्रायर, एस.ए., और ब्रायंट, सी. (2005)। 'सार्वजनिक स्वास्थ्य में सामाजिक विपणन।' सार्वजनिक स्वास्थ्य की वार्षिक समीक्षा, 26, 319-339।

बाउर, टी., और आर्ट्स, एन. (2019)। 'अधिक महिलाओं को देखना और महिलाओं को अधिक देखना: डच टेलीविजन विज्ञापनों में महिलाओं के चित्रण में परिवर्तन।' सेक्स भूमिकाएँ, 80(3-4), 185-197।

कर्टनी, ए.ई., और लॉकरेट्ज़, एस.डब्ल्यू. (1971)। 'एक महिला का स्थान: पत्रिका विज्ञापनों में महिलाओं द्वारा चित्रित भूमिकाओं का एक विश्लेषण।' जर्नल ऑफ मार्केटिंग रिसर्च, 8(1), 92-95।

गिल, आर. (2008). 'सशक्तीकरण/लिंगवाद: समसामयिक विज्ञापन में महिला यौन एजेंसी का चित्रण।' नारीवाद और मनोविज्ञान, 18(1), 35-60.

पेनालोज़ा, एल., और प्राइस, एल. एल. (1993)। 'उपभोक्ता प्रतिरोध: एक वैचारिक अवलोकन।' उपभोक्ता अनुसंधान में प्रगति, 20(1), 97-100।

स्टर्न, बी.बी. (1999)। 'एडवुमेन एंड एडमेन: द जेंडरिंग ऑफ एडवरटाइजिंग।' विज्ञापन और उपभोक्ता मनोविज्ञान में (पीपी. 167-191)। लॉरेंस एर्लबौम एसोसिएट्स पब्लिशर्स।

एसोसिएट प्रोफेसर,
स्नातकोत्तर शिक्षा विभाग, सरदार पटेल विश्वविद्यालय,
वल्लभ विद्यानगर, गुजरात
संपर्क नंबर: 9979300693
ईमेल: amacwan10@gmail.com

निर्मलवर्मा की कहानी मायादर्पण में नारी चेतना

डॉ. षीना.वी.के.

हिन्दी साहित्य जगत के प्रौढ महत्वपूर्ण साहित्यकार है निर्मलवर्मा जो नई कहानी के प्रमुख हस्ताक्षर है। उन्होंने विभिन्न साहित्यक विधाओं में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। कहानी, उपन्यास, नाटक, यात्रा साहित्य, सस्मरण, समीक्षा, अनुवाद आदि अनेक साहित्यिक विधाओं में उन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। कहानी साहित्य में उनके योगदान महत्वपुर्ण हैं।

मायादर्पण कहानी निर्मलवर्मा के कहानी सग्रंह जलती झाडी के अन्तर्गत आती है। इस कहानी के प्रमुख पात्र हैं तरन, इजीनियर बाबू, तरन के पिता, दीवान साहब, तरन की बुआ, नौकर शंभू मोन्टू आदि। मायादर्पण कहानी का केंद्रपात्र तरन है। वह इंजीनियर बाबू से प्रेम करती है। इंजीनियर बाबू तरन के शहर में सडक आदि के निर्माण के काम के लिए आए हुए व्यक्तिथे । तरन के पिता बहुत ही दिलदार व्यक्ति थे। शाम को तरन के घर में अनेक व्यक्तिय़ों की बैठक बरामदे में होती थी। तरन के पिता वहाँ के बडे जमीन्दार व्यक्तिथे। उनके अनेक मित्र मणडलियाँ थीं। शहर के बडे लोग, ठेकेदार, सरकारी सुपरवाइजर आदि तरन के पिता दीवान साहब से मिलने आया करते थे। बूढे लोग से लेकर छोटी उम्रवाले युवक भी वहाँ आते थे। इंजीनियर बाबु भी तरन के पिता के मित्र थे जो कॉलेज के छात्र के समान छोटी उम्रवाले व्यक्तिथे । तरन की माँ की मृत्यु पहले हुई थी। तरन की बुआ तरन के विवाह का सपना देखती है।

तरन के पिता के मन में तरन के विवाह संपन्न होने के प्रति कोई दिलचस्पी नही थी। तरन का एकमात्र भाई घर छोडकर चला गया था। वह आसाम के चायबाग में रहता है। तरन अपने भाई को हमेशा पत्र लिखा करती है। तरन चाहती है कि वह अपने भाई के पास कुछ दिन रहने के लिए जाएँ। लेकिन पिता ने इनकार किया था। तरन के पिता ने उसे कमरे में बुलाकर पूछा कि क्या घर में मन नही लगता है। इस प्रकार तरन ने अपना इरादा बदल दिया था।

बुआ को दमा की बीमारी थी। तरन के पिता से बुआ ने तरन के विवाह का जिक्र किया तो पिता क्रुद्ध हुए थे। पिता ने कहा कि माँ के सामने सब कुछ होता। अब माँ नही है। पिता ने माँ के गहने एक पोटली में रखकर बुआँ के सामने फेंक दिये थे। उन्हें लेकर तरन जहाँ जाना चाहे चली जाएँ। इस प्रकार पिता ने कहा था । तरन ने विचार किया कि भाई के पास कुछ दिन रहना है। लेकिन वह ऐसा नही कर सकी ।

तरन इंजीनीयर बाबू के व्यक्तित्व से आकर्षित हो जाता है। लेकिन इजीनियर बाबू ने तरन का प्यार नहीं समझा था। अतं में तरन पिता के साथ अपने घर में ही जीवन व्यतीत करने का निर्णय लेती है।

तरन अकेली है। दूर तक फैला रेगिस्तान टूटते मकानों के खण्डहर, हवा, वीरानगी सन्नाटा और घर के बोझिल वातावरण के प्रभाव तरन के मन पर पडता है। इन्जीनियर बाबू के प्रति तरन के मन में अजीब भावनाएँ थीं। इन्जीनियर बाबू सरकारी आर्किटेक्ट थे। उम्र से तरन के पिता से छोटे थे।

इंजीनियर बाबू तरन के घर में आते थे तब तरन स्वयं साज सजावट करके उसके सामने जाती थी और बातें करती थी। कहानी में ऐसे प्रसंग के उदाहरण मिलते हैं।- "तरन ने हडबडाकर बालों को समेट लिया दो तीन बार जल्दी जल्दी कंधी से उन्हें कहीं धीरे से दबाया कही हलके से उठाया। पाउडर लगाया तो आँखें फडफडा उठी। माँग के नीचे माथे के बीचों बीच बिन्दी लगाते हुए तरन का हाथ क्षण भर के लिए ठिठक सा गया।"[1]

इस प्रकार तरन के चरित्र को उभारने लायक अनेक वाक्य कहानी में मिलते हैं। जैसे कि प्रस्तुत वाक्य.... "तरन बुआ के चले जाने के बाद लेट गई। खिडकी से सिग्नल की लाल बत्ती दीखती है दूर अंधेरे में। नहर के पीछे बैरक है जिन पर रात चुपचाप झुक आई है। इन्हीं बैरकों की किसी संकरी अंधेरी कोठरी में इन्जीनियर बाबू रहते होंगे, तरन ने सोचा और आँखें मूँद ली।"[2] इन वाक्यों में तरन की चरित्रगत विशेषताएँ विचारधाराएँ मिलती है।

भाई के पास कुछ दिन रहने का निर्णय तरन ने लिया था। लेकिन पिता ने इनकार किया तो तरन ने अपने विचार बदल दिये थे । वह उस शाम को घर से बाहर टहलने गई थी।

सामने से इन्जीनियर बाबू को आते देखकर वह उससे मिली। दोनों साथ साथ सडक से चलने लगे। तरन ने कहा कि घर में उमस ज्यादा है। इस कारण टहलने निकली थी। दोनों देर तक बात करते हुए उँची नीची कच्ची सडक पर चलने लगे थे। इंजीनियर बाबू ने कहा कि सडक बनने के बाद टीलें पहाडें आदि गिरा दिया जाएगा। रेलवे लाइन के सामने बजंर भूमि जोता जाएगा। नहर के पास कारखाने बनेंगे ।

शाम को अंधेरा गिरने लगा तो इंजीनियर बाबु और तरन लौटने लगे। अंधेरे गिरते वक्तदोनों लौट चले। इंजीनियर बाबु रेल की पटरी पार करके मैदान के दूसरी तरफ चल दिये तरन भी वापस लौटी।

उसे लगा बरसों के बाद उसके पास एक रहस्यमय अनिर्वचनीय सुख आया है। जिन्दगी में केवल एक बार जीना होना होता है और उसे उसके अलावा कोई और नहीं जिएगा। तरन विचार करती है कि अब इंस घर में कभी वापस नहीं आएगी। वह अपनी जिन्दगी स्वयं जिएगी। उसे यहाँ अब रहने के लिए किसी का मोह पीछे नहीं खीचेंगे।

वह अपने घर पहुँच गई। बाबू के कमरे में प्रकाश नहीं थे। दरवाज़ा तरन ने ठेल दिया तो देखा कि निद्रा में चलते मरीज़ की तरह पिता कमरे में घूम रहे थे। तरन ने पिता को पुकारा। पिता के रूखें बाल, पतले हाथों पर नीली नसें झुर्रियाँ वाले चेहरे उसकी आँखों के सामने आये। उसको मालूम हुआ कि वह बाबू से कभी अलग नहीं हो सकेगी।

कहानी के अंत में तरन निर्णय लेती है कि वह अकेली रहेगी किंतु बाबू की छाया से बँधी हुई और बाबू का अकेलापन हमेशा जिन्दगी भर उससे जुडकर रहेगा। अपने कमरे में लौटकर तरन खुली खिडकी के आगे खडी रही। उसे इंजीनियर बाबू की बातें याद हो आई कि कुछ वर्षों में सबकुछ बदल जाएगा।

क्या सचमुच सब बदल जाएगा। यही तरन सोचने लगती है। तरन लेटकर सोना शुरू की तो भाई का शकल उसकी आँखों के सामने दिखायी दिया।इस कहानी में बदलते जीवनमूल्य मानव रिश्ते आदि के चित्रण हैं। केंद्र कथापात्र के ऊब, घुटन निराशा आदि भावनाओं के चित्रण कहानी में मिलते हैं। कहानी की भाषा प्रौढ़ तथा संवेदनायुक्त है। नारी द्वारा भोगनेवाले भिन्न भिन्न अनुभवों के विवरण वर्तमान युग के अनकूल अभिव्यक्त किये हैं। भिन्न भिन्न परिस्थितियों में नारी स्वयं सिकुडती जा रही है। संवाद पात्र के अनुकूल है जो संक्षिप्त तथा रोचक चुस्त है। प्रतीकों के प्रयोग भी कहानी की विशेषताएँ हैं। वर्तमान मानव द्वारा भोगनेवाले, ऊब, घुटन, अलगाव बोध, मूल्यों का टूटन, मानवमूल्यों-रिश्तों में बदलाव, पश्चिमी संस्कृति सभ्यता आदि के निर्मलवर्मा की कहानियों में यथावत् ढ़ँग से चित्रण मिलते हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ

1) जलती झाडी कहानी संग्रह पृ.सं 28
2) वही पृ.सं -34

सह आचार्या, हिन्दी विभाग
सरकारी ब्रेन्नन कॉलेज
तलश्शेरी, घमर्डम पी.ओ, 670 106
कन्नूर जिला, केरल
फोन - 9744772422

कविता

स्वर्ग

डॉ. जॉय वाळयिल

स्वर्ग-कपाट की ओर निहार
प्रवेश की अनुमति माँग
प्रतीक्षा निर्भर हो,
खड़ा है वह भक्त कर जोड़।
कितनी-कितनी मन्नतें उतारीं
दूभर राहों की दूरियाँ कितनी तय कीं,
नाना प्रकार से अर्जित कितना ही धन
परम पिता को भी किया अर्पित,
सब कुछ इसलिए कि -
आखिर किसी दिन इधर आएगा तो
कपाट के भीतर प्रवेश पाना ही तो है।
मृति की कर्कशतावश
रसीद ले नहीं पाया
सब कुछ यहीं ही होगा
सभी ने यही तो कहा
ईश को सुवर्ण से पोता गया तो
कोई - कोई बोले कि
यह तो है काला धन
ईश के निकट के सेवक बोले कि
अव्यय को सदा ही प्रिय है स्वर्ण।
झूम-झूम कर बह आया मंद समीर
सब कहीं बिखेर गई अलौकिक द्युति,
परमोदार सुमोहन कुसुमों ने
बिखेर दी सुबास।
मृदुल मृदु लय रणित अलौकिक
मधुर नाद तरंग।
हिलोर ज्यों उर को पुलकित करता
असुलभ वाणी-नर्तन
ऊपर की ओर उठ रहा है,
रुपहली चाँदनी की दीप्ति
बह रही है चारों ओर।
स्वर्ग है ईश का मन ही
उस ओर आकर्षित तो
प्रशांत विस्मय उस ओर जाना।
चित्त को करना प्रदीप्त
भलाई से भरपूर मन सारे
उस सचाई में हो जाते हैं विलीन
जहाँ जहाँ उदित होते हैं तारे
वहाँ वहाँ अक्षत श्वेत धर जाते हैं।
नहीं है गोपुर, नहीं है कपाट,
कोई प्रहरी भी तो नहीं है यहाँ
सारे सौम्य मन सहज ही
उस ओर आकृष्ट हो
समा जाएँगे।
कानन - निर्झरी बह निकलेगी अनजाने ही
तरंगायित सागर के अंतस्थल को पाने।
नहीं चाहिए कोई रसीद
ईश को चाहिए केवल सु-मन।
भूमि में स्वर्ग का संज्ञान प्राप्त मन
जहाँ प्रवेश पाते हैं वही तो स्वर्ग है।

अनुवादः डॉ.एस. तंकमणि अम्मा

वर्तमान का आभासी खेल और जैनेंद्र कुमार की 'खेल'

डॉ.जूलिया एम्मानुएल

आज के बच्चों की मानसिकता और व्यवहार में बदलते सामाजिक परिप्रेक्ष्य का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। सामाजिक परिप्रेक्ष्य का संबंध उनके समाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक और पर्यावरणिक माहौल से है जो उनके मानसिक विकास और व्यवहार में गहरा प्रभाव डालता है।आज के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण बदलाव यह है कि आज के बच्चे अधिकतर एक विश्वसामाजिक मानसिकता के साथ बढ़ रहे हैं। वे अधिक जागरूक हैं और अधिकतर सामाजिक मुद्दों के प्रति संवेदनशील हो गए हैं। इंटरनेट, सोशल मीडिया, टेलीविजन और अन्य माध्यमों के प्रचार से वे विश्वसामाजिक मुद्दों और विचारधाराओं से भी अधिक संपर्क रखने लगे हैं । इसके साथ ही साथ बच्चों की मानसिकता में व्यापक परिवर्तन आए हैं। पहले के बच्चे समाजीकरण, पारिवारिक संबंध और सामाजिक अधिकार के बारे में अधिकतर सोचते थे तो आज के बच्चे निजी संबंध, वैयक्तिक्र अधिकार ,आत्मनिर्भरता और स्वतंत्रता के बारे में अधिक सोचते हैं। उन्हें सामाजिक-वैयक्तिक्र दायित्व के बदले वैयक्तिक स्वतंत्रता और व्यक्तिगत अधिकारों की गहरी जागरूकता होती है, और वे अपने मत और धारणाओं के प्रति संवेदनशील भी हैं और बुजुर्गों का इसमें हस्तक्षेप करने का वे हरगिज समर्थन नहीं करते। वे अधिकतर एक संवेदनशील, समानांतर सोच वाले समाज की कल्पना करते हैं, जहां व्यक्ति की जाति, धर्म, लिंग, या यौन मान्यताओं से कोई सम्बंध नहीं होता। वे इसके लिए बराबरी और न्याय की मांग करते हैं।

इंटरनेट, सोशल मीडिया, टेलीविजन और अन्य माध्यमों के कारण आज के बच्चे अधिकतर ग्लोबल संबंधों में बढ़ रहे हैं। उनका व्यवहार और मानसिकता अंतरराष्ट्रीय मानसिकता, संबंध, और सहयोग की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए विकसित होता है। उन्हें बचपन से ही विभिन्न भाषाओं, संस्कृतियों, और जीवनशैलियों को जानने का मौका मिलते हैं जिससे उन्हें विविधता का अनुभव होता है, उनकी मानसिकता और सोच में व्यापकता आती है। बदलते इन सभी परिप्रेक्ष्यों में बच्चों की मानसिकता और व्यवहार में बदलाव देखा जा सकता है, जो उन्हें बदलते सामाजिक और सांस्कृतिक परिदृश्यों के अनुरूप बनाता है। यह समझना महत्वपूर्ण है कि यह परिप्रेक्ष्य केवल बच्चों की मानसिकता में ही नहीं है, बल्कि समाज की संरचना, परंपराओं, शिक्षा प्रणाली, मीडिया, और परिवार के प्रभावों में भी बदलाव लाता है।

प्रत्येक बालकों के शारीरिक, मानसिक विकास में दोस्तों और समवयस्कों के साथ खेलकूद का भी महत्वपूर्ण स्थान है। खेलने के दौरान बच्चे अन्य बच्चों के साथ संवाद करते हैं, नई रचनात्मकता का प्रदर्शन करते हैं, निर्णय लेते हैं, आत्मनियंत्रण विकसित करते हैं ,नए कौशल सीखते हैं, समस्याओं का हल ढूंढते हैं और अपनी शारीरिक और मानसिक क्षमताओं को विकसित करते हैं। इससे उनकी सोचने, समस्याओं का समाधान करने, और नवीनता को प्रोत्साहित करने की क्षमता में सुधार आती है। सामाजिक विकास को बढ़ावा देता है। जब बच्चे खेलते हैं, उनमें साझेदारी, सहयोग, संगठन, और टीमवर्क जैसी महत्त्वपूर्ण सामाजिक कौशलों का भी विकास होता है। वे संघर्षों का सामना करना सीखते हैं, जीत और हार के साथ उम्रदराज करते हैं, और सामान्य नियमों को समझते हैं।

जैनेन्द्र कुमार की कहानी खेल में दो मासूम बच्चे सुरबाला, जो सात साल की है, और मनोहर, जो नौ साल का है, शाम के समय गंगा के खाली रेतीले तट पर खेल में बहुत तल्लीन हैं। बालिका अपने पैर पर रेत जमाकर और थोप-थोपकर भाड़ बना रही है और साथ में दिखावटी तरीके से धमकी भी देती है कि अगर ठीक से ना बना तो फोड़ दूँगी,फिर प्यार से भाड़े को थपका - थपकाकर ठीक करने लगती है। बच्चे बड़े लोगों का नकल करता है। जैसे कि जेम्स ए. बाल्डविन ने कहा,

बच्चे अपने बड़ों की बात सुनने में कभी भी अच्छे नहीं रहे हैं, लेकिन वे उनकी नकल करने में कभी असफल नहीं हुए हैं।' सुरबाला संभवतः उस व्यवहार का अनुकरण कर रही होगी जो अपने आसपास के बुजुर्गों से देखा अपनाया हो। प्यार भरी डांट बच्चों के विकास में सकारात्मक प्रभाव डाल सकती है। वे उन्हें संघर्षों का सामना करने में और उनके मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य में सकारात्मक प्रभाव डाल सकती है। एक हाथ से अपने ओर प्यार से खींच रखकर जब दूसरे हाथ से चाहे थप्पड़ भी मारे ,बच्चों पर सकारात्मक प्रभाव ही डाल सकता है। हालाँकि, डाँटना और सज़ा देना माँ-बाप के अवसाद को कम करने के साधन के रूप में इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए। बच्चों को यह समझ में आ जाना चाहिए की मुझे अब क्यूँ डाँट पड़ा? फिर वह बच्चा वही प्रतिक्रिया समान संदर्भ में अपने से छोटे बच्चों के साथ भी कर देगा। यदि उन्हें उनकी ग़लतियाँ प्यार से समझाई जाए, तो संभावना है कि वे अपने छोटे भाई-बहनों के साथ भी वही व्यवहार दोहराएंगे,अगर उसे डांट -डपट, गाली, और थप्पड़ देते तो वह भी वही करेगा अपने छोटों के साथ। लेकिन तब माँ -बाप उसके निर्दययता पूर्ण व्यवहारों पर उसे समझाने की कोशिश करेंगे कि अपने छोटे भाई-बहनों के साथ ऐसा नहीं करना चाहिए और तब वह बच्चा तब बिलकुल असमंजस में पड़ जाता है क्योंकि उसने भी वही किया था जो उसके साथ किया गया। बड़े लोगों को यह ध्यान में रखना चाहिए की बच्चे हमें देखते हैं, हमसे सीखते हैं , मन में जो है, उसे वे सुन या देख नहीं पाएँगे, लेकिन जबान से जो भी निकलें, चेहरे पर जो भाव आएं ,जो पेश आएँ, सब कुछ वे अपनायेंगे, हृदयंगम करेंगे और फिर बिना कुछ बदले पुनः प्रस्तुत करेंगे ,कभी-कभी अप्रत्याशित अवसरों पर।

जैनेंद्र सुरबाला के मनोविचारों के माध्यम से जिज्ञासु बालक मन की चंचलता एवं शरारती प्रकृति को रोचक ढंग से प्रदर्शित करते हैं। सुरबाला मन ही मन सोचती है कि वह मनोहर को उसे चिढ़ाने के कारण अपनी कुटिया में प्रवेश नहीं करने देगी लेकिन साथ ही वह इस विचार से हैरान हो जाती है कि कहीं मनोहर आए और तप रही भाड़ में पैर रखकर शायद उसका पैर जल तो न जाए। बच्चों का झगड़ा - सुलह पल भर में होता है, वे दोस्तों से रुष्ट हो जाते है, लेकिन जल्द ही उसे भूलकर मिलनसार हो जाते है, वे लड़ाते हैं जरूर, परंतु नफरत नहीं करते। सुरबाला बहुत कल्पनाशील लड़की है जो मनोहर को धक्का देकर भी उसे पैर जल जाने से बचाने का दृश्य वह भावना में देख कर एक साथ उसे मज़ा भी आती है और उदासी भी, क्योंकि मनोहर के गिरने का संकल्पित दृश्य भी उसे उदासीन बनाती है। सतर्क एवं सावधानी से उसने भाड़ को बनाया फिर भाड़ के सिर पर एक कुटी भी बनायी।दृढ़ निश्चय और सूक्ष्मता भरी सुरबाला ने आखिर भाड़ में धुआँ निकलने का स्थान भी बनाई। अपने हाथों बनाई ब्रह्मांड का सबसे सम्पूर्ण भाड़ और विश्व की सबसे सुंदर इस वस्तु का सौन्दर्य देखकर वह विस्मित और पुलकित हो जाती है। जो भी काम करना है उसमें तल्लीन होकर खुद को सौ फ़ीसदी समर्पित कर कैसे करना है, और इसके नतीजे का आस्वादन कैसे करना है , हमें सुरबाला से सीखना चाहिए। मनोहर तो मस्तमौला है ,वह कल्पना से अधिक यथार्थ भूमि पर रहता है ,इसलिए ही सुरबाला द्वारा बनाए उत्कृष्ट भाड़ में उसे सिर्फ बालू के ढ़ेर के सिवा कुछ नजर नहीं आया ,और उसने बिना सोचे एक लात में भाड़ का काम तमाम कर दिया। उसका उद्देश्य बिल्कुल सुरबाला को चोट पहुंचाना नहीं था। सुरबाला के लिए अपने हाथ का बनाया वह भाड़ बहुत मूल्यवान था।इसमें वह जिसको साझी करना चाहती थी वही मनोहर उसे तोड़ -फोड़ डाला।लेखक यहीं एक परम सत्य को पाठकों के सामने प्रस्तुत करते है -जीवन की क्षण भंगुरता और नश्वरता का।मानव जो सपनों के किले बनाता है ,एक ही क्षण में वह चकनाचूर हो जाते है, लेकिन परम सत्य यह है कि भाड़ जो रेत से बनाया गया था, रेत में ही मिला गया है, अगर उसे मनोहर लात मारकर ना तोड़ा जाता तो भी कुछ समय बाद धीरे धीरे किसी न किसी कारण से भाड़ का रूप नष्ट होकर फिर रेत में ही मिल गया होता ।लेकिन यहाँ जो टूट गया, वह सुरबाला अपने कल्पना में देखे उसके महत्वाकांक्षी सोच विचार है,अपने श्रेष्ट कृति को लेकर उसके मन ही मन में बने हुए अहं की भावना है, मनोहर से प्रत्याशित प्रशंसा की प्रतीक्षा है।इसमें मनोहर का भी कोई दोष नहीं, वह साधन मात्र है, इस परम सत्य उसे समझाने का, लेकिन बेचारी सात साल की लड़की क्या जाने फूटा कुम्भ जल जल हीं समाना, यह तथ कथौ गियानी।

कभी-कभी हम बच्चों से उम्र से अधिक समझदारी की उम्मीद रखते हैं, लेकिन यह नजरंदाज नहीं किया जाना चाहिए कि समझदारी प्रत्येक व्यक्तिको उसके अनुभवों से , खासकर कटु अनुभवों के माध्यम से हासिल होती है जो उम्र के साथ बढ़ती जाती है। इस सच्चाई को स्वीकृत किए बिना अपनी प्रतीक्षा का बोझ भी लोग बच्चों पर डाल देते हैं। बच्चे अनुभवी नहीं होते,समझदार भी, लेकिन सहानुभूति और समानुभूति उनके दिल में खूब होती है। रूठे सुरबाला को देखकर मनोहर के दिल में जितना खेद हुआ इससे ज्यादा, माफी मांगते हुए मनोहर के स्वर के कंपन को पहचानकर सुरबाला को हुआ। क्योंकि वह छोटी लड़की पहचानती है कि भाड़ को दिखाकर जिस मनोहर का अभिनंदन पाना वह चाहती थी ,उस भाड़ से भी बढ़कर मूल्यवान है उसकी खुशी। अकसर लोग साध्य से ज्यादा साधन पर अधिक ध्यान देने का भूल कर बैठते हैं-, और इसके परवरिश करते-करते साध्य को हमेशा-हमेशा के लिए खो देते हैं । मनोहर भी सुरबाला को मनाने केलिए कुछ भी करने को तैयार है ,इतना तक कि उससे मार खाने को भी। सुरबाला के बालसुलभ निर्मल प्यार के वजह से या लेखक के अनुसार उसके स्त्रीत्व के कारण व्यथा - क्रोध का स्थान तब तक उल्लास भरी ब्याज कोप ने ले लिया था। मनोहर से भाड़ बनवाकर ,जैसे उसने अपने भाड़ के उपर कुड़ी,धुआँ जाने का रास्ता सब बनाया था ,वह सब मनोहर के भाड़ पर भी बनवाकर आखिर उसे लात मारकर चकनाचूर करके प्रसन्न हो जाती है सुरबाला। पता नहीं,इस क्रिया को भी हम स्त्री सहज कह सकते हैं या नहीं। क्योंकि स्त्रियों से सिर्फ सद्गुणों की उम्मीद रखी जाती है, क्षमा ही स्त्री का विशेष गुण माना जाता है, प्रतिशोध नहीं। सुरबाला न्याय की मांग करती है,जैसे को तैसे करके वह खुश हो जाती है। इन सारी क्रियाकलापों के बीचोबीच वे दोनों बहुत सारी बातें सीख भी लेती हैं।

बच्चों द्वारा रेत के ढेर और रेत की कूड़ी के साथ खेलना दरअसल एक आम खेल है। जब एक बच्चा रेत की कूड़ी बनाता है, तो दूसरे बच्चे उसे तोड़ देते हैं। इसमें आमतौर पर किसी विजय या हार की मानसिकता नहीं होती है। यह एक सामाजिक और मनोरंजक गतिविधि होती है, जिसमें बच्चे एक दूसरे के साथ मिलकर खेलते हैं। यद्यपि इस खेल के दौरान कभी-कभी किसी बच्चे को उसकी बनाई गई कूड़ी तोड़ने पर प्रतिस्पर्धी भावनाएं उत्पन्न हो सकती हैं, लेकिन यह एक असाधारण मानसिकता नहीं है। यह शारीरिक और मनोवैज्ञानिक विकास का हिस्सा है, जिसमें बच्चे सहयोग, संघर्ष और समझौता की भावना के अभ्यास करते हैं।जब एक बच्चा अपनी कूड़ी बनाता है, तो वह अपनी सामरिक क्षमताओं और रचनात्मकता का प्रदर्शन करता है। जब दूसरे बच्चे उसे तोड़ते हैं, इस खेल से उन्हें दूसरों की भावनाओं का ध्यान देना, समझना और सहानुभूति करने का भी सीख मिलती है।

आधुनिक प्रतिस्पर्धात्मक जीवनशैली और माता-पिता की महत्वाकांक्षा भी बच्चों को बच्चों की तरह जीने से वंचित कर देती है। उन्हें स्कूल के अतिरिक्त निजी ट्यूशन ,प्रतियोगी परीक्षाओं केलिए अत्यधिक मार्गदर्शन-प्रशिक्षण आदि अनेक मानसिक-बौद्धिक दबावों का सामना करना पड़ता है, जिससे उन्हें खुद को विभिन्न शारीरिक व्यायामों और खेलों के लिए समय निकालने में परेशानी होती है। आधुनिक जीवनशैली में कामकाजी माता-पिता के उपर अक्सर बहुत सारे कार्यभार और दबाव होते हैं, जिनके कारण उन्हें अपने बच्चों के साथ समय बिताने के लिए कम समय मिलता है। इससे बच्चों को सही मार्गदर्शन और परिचर्चा की कमी हो सकती है। नतीजा यह होता है कि आज के बच्चों का जीवन अधिकांश अंतर्निहित रहता है, वे घर के बाहर अन्य बच्चों के साथ खेलने नहीं जाते हैं और इसके बजाय वे अकेले अपने कमरे में वक्त बिताते हैं। खतरा तो वहीं है। अति व्यस्त माँ-बाप बंद कमरे के अंतर असीमित इंटरनेट और एक स्मार्ट फोन के द्वारा अपना लाइला क्या कुछ न कर पाता, इसका कुछ अंदाजा लगा न सकता। इन मासूम बच्चों के आगे सिर्फ ब्लू ह्वैल ,पब जी जैसे खूनी खेल ही नहीं ऑनलाइन लाइव कैसीनो गेम और यहाँ तक कि सेक्स और पॉर्न गेम भी निर्बाध परोसा जाता है।

मनोहर और सुरबाला के जीवन में जो सादगी है, स्वच्छता है,वे बालपन का हक है, लेकिन आधुनिकता और भौतिक विकास की गाड़ी में कोई रीवर्स गियर नहीं होता। इसे हम रोक न पाएंगे,रोकना भी नहीं चाहिए लेकिन बच्चे आज जरूरत से ज्यादा देखते,सुनते और समझते

हैं।असली दुनिया को ठीक से देखने-समझने के बजाय आभासी दुनिया में रिहाइश करते है, फिर वे असमंजस में पड़ जाते है इसमें न केवल बच्चों के शारीरिक, बल्कि मानसिक स्वास्थ्य व उसके परिवेश पर भी पूरा ध्यान देना चाहिए । उन्हें संवेदनशील और सतर्क बनाएं , जोकि आज समाज की ज़रूरत भी है। साथ ही उनके साथ अधिक समय बिताएँ,कमरे के चार दीवारों के बाहर जाने को प्रेरित करें , रेत और मिट्टी में खेलने दें इसके कई फायदे हो सकते हैं जैसे कि इसका पर्यावरण और प्रकृति से संबंधित होना, आंतरिक शांति को प्रोत्साहित करना, सामरिक और सामाजिक कौशलों का विकास करना ताकि वे प्रेम, लगाव आदि के साथ-साथ नैतिक मूल्यों को भी सीखें और अच्छी अनुभूतियों और विचारों का भी उनमें प्रसार हो। सम्भवतः इस प्रकर उनकी दुनिया के दायरे आभासी दुनिया से निकल कर थोड़े और संयमित और स्थिर हो जाएँ

बदलते परिवेश और बच्चों की बदलती मानसिकता के इस संदर्भ में, बाल मनोविज्ञान को शिक्षा पाठ्यक्रमों में प्रवेश देने की आवश्यकता होती है।शिक्षा पाठ्यक्रमों में बाल मनोविज्ञान को शामिल करने से छात्रों को अधिक संवेदनशील, समझदार, और सहज वातावरण मिलता है जहां उन्हें अपनी भावनाओं को समझने, स्वीकार करने, और व्यक्तकरने की कला सिखाई जा सकती है। इससे छात्रों का आत्मविश्वास और सामाजिक बनावट में सुधार हो सकता है, जो उनके समूह में सहयोग, समझदारी, और समाधान कौशल को बढ़ावा देता है।बाल मनोविज्ञान को समझने से शिक्षक और अभिभावक बच्चों की समझदारी को संवर्धित कर सकते हैं। इससे उन्हें बेहतर तरीके से समझा जा सकता है और उनके साथ अधिक संवाद करने का अवसर मिलता है। इससे उनकी सहनशीलता, सहयोग, और अनुशासन में सुधार हो सकता है।

विभाग अध्यक्षा एवं सहायक आचार्या
निर्मला कॉलेज,मुवाट्टुपुष़ा

कविता

शुचि सुगंध है मानवता

डॉ.सीताराम गुप्त 'दिनेश'

मानव के निर्मल अंतर की भव्य भावना मानवता
धरती है फूलों की बगिया शुचि सुगंध है मानवता।
मानव मूल्यों की जननी है पोषक है संरक्षक है
सद्भावों की चिरज्योतिर्मय दीपमालिका मानवता।

जग के सभी महापुरुषों को मान्य रही है मानवता
दुनिया के सारे धर्मों में ओतप्रोत है मानवता।
जाति धर्म गोरे काले के भेद भावों से परे रही
झगड़ रहे मतवाद धरा पर प्यार बढ़ाती मानवता।

मन की मौली राजनीति से बहुत दुखी है वह दिल से
युद्ध और आतंकवाद से घायल होती मानवता।
विश्व एक परिवार बनाने को आकुल वह कल्याणी
विश्व शांति की सदा पुजारिन रही सदाशय मानवता।

विश्व प्रेम से मुदित महकता दिल वह देवालय होगा
जब मानव के विमल हृदय में वास करेगी मानवता।
हथियारों को करो विसर्जित विश्व प्रेम के सागर में
पंचशील का दीप जलायेगी प्रमुदित हो मानवता।

गढ़ी परिसर आलमपुर, जिलाभिण्ड, मध्य प्रदेश, पिन - 477 449

स्वाधीनता संग्राम और हिंदी

डॉ. गिरधारी लाल लोधी

शोध-सारांश- बहुमुख आंदोलनों के प्रवर्तकों तथा संचालकों को अपने उद्देश्यों की पूर्ति एवं लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एक ऐसी राष्ट्रभाषा की आवश्यकता महसूस हुई जो संपूर्ण भारत को संपर्क-सूत्र में बांधती हो। उत्तर से दक्षिण तक अधिसंख्य व्यक्तियों के लिए अभिव्यक्ति का सहज-सरल माध्यम बन सके तथा आंग्ल या कोई अन्य विदेशी मूल की भाषा न होकर कोई देशी भाषा हो। चूकि ये प्रवर्तक, प्रचारक, सुधारक, कहीं-न-कहीं राष्ट्रीय आंदोलन से सक्रिय रूप से जुड़े थे, अतः उन्होंने प्रादेशिक स्तर पर प्रादेशिक भाषाएँ तथा राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय आंदोलन की भाषा-हिंदी को प्रचार-प्रसार के माध्यम भाषा के रूप में स्वीकार कर हिंदी के प्रचार-प्रसार की गति तीव्रतर कर दी।

मूल शब्द - हिंदी, राष्ट्रभाषा, राजभाषा, संपर्क-सूत्र, सहज-सरल माध्यम, स्वतंत्रता संग्राम, धार्मिक-सामाजिक संस्थाओं, राष्ट्रीय आंदोलन।

प्रस्तावनाः 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हिंदी को अदालतों आदि में प्रवेश मिल गया, परंतु इससे हिंदी के पक्षधरों को संतोष नहीं हुआ। एक ओर प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम (सन्1857) का सीखा पराजयबोध और दूसरी ओर सन्1885 में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के कारण भारतीयों के मन में अपनी स्वतंत्रता की चिंगारी पूरी तरह बुझी नहीं थी। अपनी इस करु ण पराजय के पश्चात् जब भारतीय पौरुष, भारतीय मनीषा तथा रण बाँकुरों ने अपने अभियान की असफलता की आंतरिक गंभीर पड़ताल की। तब उन्हें यह एक महत्वपूर्ण सूत्र मिला कि उपयुक्त। सरल, सहज, सामान्य भाषा के न होने के कारण आंदोलन के लक्ष्य को, अभिप्राय को यथासमय जन-सामान्य तक नहीं पहुँचाया जा सका और इस कारण सर्वसाधारण जनता को ठीक से संगठित नहीं किया जा सका। परंतु एक बात तो निश्चित थी कि स्वतंत्रता संग्राम के प्रति अंग्रेजों द्वारा अपनाए गए दमनात्मक रुख के कारण लोगों को अंग्रेजो से गहरी घृणा हो गई थी और उनमें राष्ट्रीय चेतना का उदय हो गया था। सन 1885 में कांग्रेस की स्थापना के साथ राष्ट्रीय आंदोलन का सूत्रपात हुआ और स्वराष्ट्र, स्वतंत्रता, स्वदेशी, स्वभाषा, राष्ट्रीय शिक्षण तथा विदेशी का बहिष्कार में वे शब्द बन गए जिनके लिए भारतीय मानस ने जेहाद पुकारा। संपूर्ण देश अब क्रमशः एक राजनीतिक इकाई में परिवर्तित हो चुका था अतः सभी के बीच संपर्क भाषा की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। तत्कालीन राष्ट्रीय-नेताओं, समाज-सुधारकों, शिक्षा-शास्त्रियों तथा साहित्यिकों ने हिंदी को इस लक्ष्य के लिए सर्वथा योग्य पाया। सर्वश्री बंकिमचंद्र चटर्जी, कवीन्द्र रवीन्द्र, महात्मा गांधी आदि ने सर्वानुमति से हिंदी को स्वीकार किया।(गोदरे 54)

श्री किशोरीदास वाजपेयी ने अपने शब्दों में तात्कालिक नेतृत्वकर्ताओं की राष्ट्रभाषा के प्रति विचार को इस प्रकार लिखा है- "अनेक बंगाली, गुजराती, पंजाबी और महाराष्ट्रीय नेता यह उद्योग कर रहे थे कि अपने राष्ट्र की एक राष्ट्रभाषा होनी चाहिए जो अंतरप्रांतीय व्यवहार का माध्यम बन सके और आगे चलकर जब देश स्वतंत्र हो, यही अपनी राष्ट्रभाषा, अंग्रेजी भाषा का स्थान ग्रहण करके देश की केन्द्रीय सरकार की भाषा बने।"(बाजपेयी 18-19)

उग्र क्रांतिकारी भी राष्ट्रीय आंदोलन में हिंदी भाषा को राष्ट्रभाषा के रू प में मानने लगे थे। जिसमें देश के क्रांतिकारियों के साथ साथ विदेश में बसे क्रांतिकारी भी सम्मिलित थे। 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हिंदी को राष्ट्रभाषा तथा राजभाषा का सम्मान दिलाने के प्रयत्न में अनेक महानायकों तथा संस्थाओं का योगदान रहा। जिनके नाम इस प्रकार है-

राष्ट्रीय, सामाजिक, धार्मिक नेतृत्वकर्ताओं तथा संस्थाओं का योगदान-

ब्रह्मसमाज-राजाराम मोहन राय ने सन् 1828 ई. में ब्रह्मसमाज की स्थापना की। इस संस्था का उद्देश्य इसाई धर्म व यूरोपिय सभ्यता से भारतीयों को अविचलित रखना था। यह संस्था मूर्तिपूजा का विरोध करती थी तथा एके ारवाद में वि ाास करती थी। राजाराम मोहन राय ने जनता में राष्ट्रीय चेतना का प्रसार करने के लिए हिंदी भाषा का प्रयोग किया।

आर्य समाज - आर्य समाज की स्थापना बम्बई में महर्षि

दयानंद सरस्वती ने की। आर्य समाज का उद्देश्य इसाई धर्म के बढ़ते प्रभाव को रोकना तथा हिंदू धर्म की कुरीतियों के प्रति लोगों को जागृत करना था। इसके लिए आर्य समाज में हिंदी में प्रवचन, भाषण, वार्तालाप को बल दिया गया। आर्य समाज के 28 नियमों में पाँचवें नियम के अनुसार आर्य समाज का पालन करने वाले व्यक्ति को हिंदी पढ़ना अनिवार्य था। महर्षि दयानंद सरस्वती ने अनेक शिक्षण संस्थानों की स्थापना की जिसका माध्यम हिंदी था। इनका प्रभाव यह था कि अनपढ़ भी आर्य समाज को जानने के लिए हिंदी अक्षर ज्ञान प्राप्त किया करते थे।

प्रार्थना समाज - महादेव गोविंद रानाडे ने सन् 1867 में प्रार्थना समाज की स्थापना की। यह संस्था महाराष्ट्र तक ही सीमित थी। इस संस्था के द्वारा थोड़ा बहुत ही हिंदी का प्रयोग किया जाता था। लेकिन रानाडे के विचारों का प्रभाव हिंदी साहित्य पर भी पड़ा।

थियोसोफिकल सोसाइटी - इस संस्था की स्थापना सन् 1875 में मैडम ब्लावत्स्की तथा कर्नल आलकाट ने अमेरिका में की। संस्था के मूल में भारतीय मूल दर्शन का अध्ययन और प्रसारण था। सन् 1875 में इन दोनों महानुभावों ने बम्बई आकर यहाँ भी उसका कार्यालय खोला। सन् 1885 में उन्होंने अडयार (मद्रास) नामक स्थान पर अपना अंतर्राष्ट्रीय कार्यालय स्थापित किया और राष्ट्रीय कार्यालय बनारस में कायम किया। श्रीमती एनी बेसेंट ने सन् 1893 से अपने विचारों का प्रचार प्रारंभ किया। इनके विचार ब्रह्मसमाज के प्रायः समानांतर हैं। सोसायटी ने इनेक शिक्षण संस्थाओं जैसे काशी में सेन्ट्रल हाई स्कूल, सेंट्रल हिंदू कालेज तथा हिंदू कन्याशाला स्थापित की। इन सभी संस्थाओं में भारतीयता, भारतीय संस्कृति और भारतीय भाषाओं पर जोर दिया गया। इससे हिंदी को काफी फायदा हुआ। एनी बेसेंट सन् 1917 में कांग्रेस की अध्यक्ष रहीं तथा सन् 1915-25 तक इन्होंने राष्ट्रभाषा का प्रचार-प्रसार करने के लिए गांधीजी के साथ दक्षिण के दौरे पर भी गई थी। अपने अंग्रेजी पत्र न्यू इंडिया में वे हिंदी लेखों का भी प्रकाशन किया करती थीं। (गोदरे 64-65) नागरी प्रचारिणी सभा काशी - वाराणसी में सन् 1893 में नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की स्थापना की गई। इसका उद्देश्य राष्ट्रभाषा हिंदी तथा राष्ट्रलिपि देवनागरी का प्रचार-प्रसार करना था। सभा के द्वारा प्रचीन पाण्डुलिपियों की खोज करना, कोश का निर्माण, हिंदी साहित्य का इतिहास लेखन, साहित्यिक कार्यक्रमों का आयोजन करना आदि कार्य किया जाता था।

हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग - सन् 1910 में नागरी प्रचारिणी सभा की बैठक में पारित प्रस्ताव के आधार पर हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की स्थापना की गई। सम्मेलन के द्वारा हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए उद्देश्य तथा कार्य क्षेत्र का निर्माण किया गया था।

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास - हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के इंदौर अधिवेशन सन् 1918 में दक्षिण भारत में हिंदी प्रचार प्रसार के लिए दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास की स्थापना की गई। परंतु इसका प्रारंभिक नाम हिंदी साहित्य सम्मेलन, मद्रास था, जिसे गांधी जी के प्रयासों से दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा नामकरण सन् 1927 किया गया। हिंदी के विकास के लिए वातावरण तैयार करना भारतीय एकता को बनाये रखना इस सभा का प्राथमिक लक्ष्य था।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा - पुरुषोत्तम दास टंडन के प्रयासों से हिंदी साहित्य सम्मेलन सन् 1936 के 25वें अधिवेशन, नागपुर में दक्षिण-उत्तर अहिंदी भाषा क्षेत्र में हिंदी के प्रसार के लिए हिंदी प्रचार समिति का निर्माण किया गया। जो हिंदी साहित्य सम्मेलन सन् 1938 के शिमला 27वें अधिवेशन में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति हो गया। जिसका मुख्यालय वर्धा में ही रहा। इस संस्था का उद्देश्य राष्ट्रभाषा के माध्यम से भारतीय एकता, राष्ट्रभाषा एवं देवनागरी लिपि का प्रचार-प्रसार करना था।

महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पुणे - महात्मा गांधी, काका कालेलकर के प्रयासों से महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा पुणे की स्थापना सन् 1937 में की गई। यह संस्था पहले राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा एवं हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से जुड़ी रही। सन् 1945 में इस संस्था को अलग कर दिया गया एवं यह महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा पुणे के नाम से कार्य करने लगी।

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक - स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है ओजस्वी नारा देने वाले तिलक ने हिंदी को ही राष्ट्रभाषा बनने के लिए सर्वोत्तम माना। डॉ. लक्ष्मीकांत वर्मा ने तिलक के विचारों को लिखा है जो इस प्रकार है- "हिंदी राष्ट्रभाषा बन सकती है-मेरी समझ में हिंदी भारत की सामान्य भाषा होनी चाहिए यानी समस्त हिंदुस्तान में बोली जाने वाली भाषा होनी चाहिए।"(वर्मा 23) तिलक ने हिंदी को सभी वर्गों, धर्मों को एक-दूसरे के करीब लाने वाली भाषा माना, 1903 में हिंदी केसरी पत्रिका का प्रकाशन

हिंदी माध्यम में किया जिससे अपनी बात को उन्होंने जनता तक पहुँचाया।

लाला लाजपतराय - उग्र राष्ट्रीय विचारधारा के प्रवर्तक लाला लाजपतराय ने पंजाब में हिंदी की पढ़ाई को अनिवार्य कराने में सराहनीय कार्य किया, उन्हीं के प्रयासों से पंजाब विश्वविद्यालय में हिंदी के पाठ्यक्रम को स्वीकार किया। इस प्रकार लालाजी ने राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी को प्रचारित-प्रसारित करने में अविस्मरणीय योगदान दिया।

पंडित मदन मोहन मालवीय - हिंदी की संघर्ष-कथा में मालवीय जी का विशिष्ट स्थान है। इनका समस्त जीवन हिंदी के लिए लड़ाई लड़ते बीता। राष्ट्रीय स्वतंत्रता और राष्ट्रभाषा हिंदी संभवतः यही उनके जीवन के दो परम लक्ष्य थे। इन्होंने सन् 1893 में नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की स्थापना में अपना योगदान दिया। सन् 1863 में सरकार द्वारा जब देवनागरी लिपि के स्थान पर रोमन लिपि के प्रयोग का सुझाव रखा गया था, तब इन्होंने उसका डट कर विरोध किया था और कोर्ट करैक्टर एण्ड प्राइमरी एजुकेशन इन नार्थ-वेस्ट प्रोविन्सेज लिखकर रोमन लिपि की अव्यवहारिकता सिद्ध करते हुए उसकी वैज्ञानिकता की धज्जियाँ उड़ा दी थीं। तथा तत्कालीन गर्वनर को उन्होंने साठ हजार हस्ताक्षरों वाला निवेदन देकर रोमन लिपि के खिलाफ जनाक्रोश एवं जनभाषा से सत्ता को परिचित कराया था और अदालतों में हिंदी को प्रवेश दिलवाया था। इन्होंने सन् 1917 में बनारस हिंदु विश्वविद्यालय की स्थापना की एवं सभी विद्यार्थियों के लिए हिंदी एक अनिवार्य विषय के रूप में पाठ्यक्रमों में शामिल कराया। हिंदी भाषा एवं साहित्य सदा उनकी कृतज्ञ रहेगी।

महात्मा गाँधी- गाँधीजी ने हिंदी भाषा की व्यवहारिकता को राष्ट्रीय आंदोलन में अच्छी तरह समझा। देश में हिंदी के लिए एक उत्साहमयी आत्मीय वातावरण का निर्माण किया। उनके शब्दों में- "हिंदी ही हिंदुस्तान के शिक्षित समुदाय की सामान्य भाषा हो सकती है यह बात निर्विवाद है। यह कैसे हो। केवल यही विचार करना है। जिस स्थान को अंग्रेजी भाषा आजकल लेने का प्रयत्न कर रही है और जिसे लेना उसके लिए असम्भव है, वही स्थान हिंदी को मिलना चाहिए क्योंकि हिंदी का उसपर पूर्ण अधिकार है।" (गाँधी 424) उन्होंने हिंदी के स्थान पर हिंदुस्तानी शब्द के प्रयोग पर बल लिया। हिंदुस्तानी को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं-"हिंदुस्तानी का मतलब उर्दू नहीं, बल्कि हिंदी और उर्दू की वह खूबसूरत मिलावट है जिसे उत्तरी हिंदुस्तान के लोग समझ सकें और जो नागरी या उर्दू लिपि में लिखि जाती हो।"(9)

इसके पक्ष में दिनकर जी ने लिखा है-आजादी की लड़ाई के दिनों में हिंदू-मुस्लिम एकता की समस्या ही प्रधान थी, अतएव भारत के सभी प्रांतों में ऐसे लोग थे, जो यह चाहते थे कि हिंदी-उर्दू की एकता से अगर हिंदू-मुस्लिम एकता की नींव पुष्ट होती है तो उचित है कि भारत की राष्ट्रभाषा हिंदुस्तानी बना दी जाए। (दिनकर 102) दक्षिण हिंदी प्रचार सभा मद्रास, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा, हिंदुस्तानी प्रचार सभा आदि संस्थाओं के द्वारा गाँधी जी ने हिंदुस्तानी का प्रचार प्रसार किया। किंतु हिंदुस्तानी नाम सफल नहीं हुआ।

राजर्षि पुरूषोत्तमदास टंडन- इन्होंने हिंदी के सम्मान, गौरव, प्रतिष्ठा के लिए सम्पूर्ण जीवन न्यौछावर कर दिया। हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के संस्थापकों में से थे। हिंदी एवं देवनागरी लिपि के इस साधक ने हिंदुस्तानी नाम पर गांधी जी का डटकर विरोध किया। हिंदी साहित्य सम्मेलन में गांधी जी द्वारा त्यागपत्र देने पर भी झुके नहीं। डॉ.शिवराज वर्मा ने लिखा है- "सत्य बात तो यह है कि हिंदी को राष्ट्रभाषा तथा संघ की राजभाषा बनाने में जो महत्वपूर्ण कार्य राजर्षि पुरूषोत्तमदास टंडन ने किया, वह कार्य दूसरा नेता न कर सका।"(वर्मा 185)

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद- भारतीय संविधान सभा के अध्यक्ष की हैसियत से उन्होंने संविधान का हिंदी रूपांतर करवाया तथा संविधान में स्वीकृत सभी भारतीय भाषाओं में पारिभाषिक कोश तैयार करवाने का महनीय कार्य किया। राष्ट्रपति कार्यालय से उन्होंने सरकारी समारोहों के निमंत्रण पत्र, राष्ट्रीय मौकों पर भाषण, राष्ट्र के नाम संदेश, विदेशी राजदूतों के द्वारा परिचय-पत्र प्रस्तुति के अवसर पर आयोजित समारोहों तथा राष्ट्रपति भवन से जारी सूचनाओं एवं परिपत्रों में हिंदी को उचित स्थान दिलाया। सरकारी कर्मचारियों के लिए हिंदी प्रशिक्षण योजना के मूल में इनका हाथ था। संक्षेप में कहा जा सकता है कि डॉ.राजेन्द्र प्रसाद जी ने हिंदी के उस स्वरूप को पुख्ता एवं प्रचलित करने में सहयोग दिया जिसे प्रयोजनमूलक हिंदी कहा जाता है।(गोदरे 59-60) एक साधारण कांग्रेसी कार्यकर्त्ता से लेकर राष्ट्रपति पद तक प्रसाद ने हिंदी की सेवा की। हिंदी भाषा परिषद कलकत्ता, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा मद्रास आदि संस्थाओं से जुड़े रहे।

सेठ गोविंद दास- एक साहित्यकार, पत्रकार, राजनेता के रूप में सेठ गोविंददास ने हिंदी की सेवा की। हिंदी-हिंदुस्तानी के विवाद पर हिंदी का समर्थन बिना विचलित हुए किया। वे राष्ट्रभाषा आंदोलन में 1916 से ही शामिल हो गए थे तथा हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के अध्यक्ष का पदभार भी सम्हाला।

काका कालेलकर- गाँधीजी के परम अनुनायियों में से एक काका कालेलकर ने हिंदुस्तानी का समर्थन किया। उन्होंने देवनागरी लिपि में कुछ परिवर्तन करने का प्रयास किया तथा हिंदी के स्थान पर सबकी बोली नाम सुझाया, लेकिन इन परिवर्तनों को अस्वीकार कर दिया गया। उन्होंने दक्षिण भारत तथा गुजरात को हिंदी का प्रचार क्षेत्र बनाया।

राजाराम मोहन राय- ब्रह्म समाज के संस्थापक राजा राममोहन राय का जन्म कलकत्ता के एक जमींदार घराने में सन् 1774 में हुआ था। वे बहुभाषाविज्ञ थे। इन्हें अंग्रेजी, ग्रीक, अरबी, फारसी, संस्कृत तथा बंगला भाषाओं का अच्छा ज्ञान था। वे हिंदू समाज में प्रचलित धार्मिक और सामाजिक कुरीतियों तथा अंधविश्वासों को दूर करने के लिए कृत संकल्प थे। वे समाचारपत्र तथा प्रेस के विचार स्वातंत्र्य के प्रबल प्रवक्ता थे। वे अंग्रेज़ी भाषा के समर्थक थे पर हिंदी के पक्षधर भी थे। उनकी मान्यता थी कि राष्ट्रीय समस्याओं और कार्यों के लिए हिंदी का प्रयोग किया जाए। कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले उनके बंगदूत (सन् 1826) में बंगला, अंग्रेजी, फारसी तथा हिंदी के पृष्ठों का विधान था। वे स्वयं हिंदी में लिखते थे और प्रचार सामग्री का प्रकाशन भी हिंदी में करते थे।(गोदरे 61)

दयानंद सरस्वती- आर्य समाज के संस्थापक ऋषि दयानंद सरस्वती का जन्म सन् 1824 में काठियावाड़ के ओरवी राज्य में औवीच्य ब्राह्मण परिवार में हुआ था। प्रांरभ में वे अपने व्याख्यानों में संस्कृत का प्रयोग करते थे। पर 21 जनवरी, 1873 कलकत्ता में श्री केशव सेन की प्रेरणा से वे हिंदी में व्याख्यान देने लगे। उन्होंने तत्पश्चात् भाषण, शास्त्रार्थ एवं पत्र-व्यवहार में हिंदी का प्रयोग किया। अपने ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' आदि भी हिंदी में लिखे। वस्तुतः उन्होंने मन, वाणी और कर्म से हिंदी की जो सेवा की, उससे हिंदी को एक नई गति, एक नई चेतना तथा एक नया स्पंदन व कंपन के साथ नवजीवन मिला। (दुबे 145)

हिंदी के सर्वाधिक व्यापक क्षेत्र को देखते हुए वे यह मानते थे कि हिंदी ही राष्ट्र की सम्पर्क भाषा या राष्ट्रभाषा बन सकती है। वे जानते थे कि राष्ट्र के लिए राष्ट्रभाषा का होना भी परम आवश्यक है। अतः हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के उद्देश्य से राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी के प्रचार-प्रसार की आवश्यकता महसूस करते हुए स्वतंत्रता आंदोलन के साथ-साथ हिंदी आंदोलन को भी आगे बढ़ाया गया। स्वतंत्रता आंदोलन को शक्ति प्रदान करने में और अंततः आंदोलन की सफलता सुनिश्चित करने में हिंदी की अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका रही। उस समय एक से ढेड़ प्रतिशत लोग ही अंग्रेजी जानते थे और उनमें से भी अधिकतर शासन की सेवा में थे। इसलिए अंग्रेजी के जरिए इतना बड़ा आंदोलन चला पाना संभव नहीं था। भारत की अन्य भाषाओं की व्यापकता भी क्षेत्र विशेष तक सीमित थी। अतः देश की सम्पर्क भाषा बन जाने का सामर्थ्य उनमें नहीं था। हिंदी भाषी क्षेत्र तो विशाल था ही, साथ ही अन्य भाषा-भाषी भारतीय भी न्यूनाधिक हिंदी से परिचित थे। देश का कोई भी कोना नहीं था जहां हिंदी की पहुँच नहीं थी। राष्ट्र की जनता को स्वतंत्रता आंदोलन के साथ जोड़ने के लिए हिंदी की महत्वपूर्ण भूमिका को देखते हुए हिंदी को आंदोलन का महत्वपूर्ण अंग बनाया गया और गाँधीजी की प्रेरणा से देश के कोने-कोने में हिंदी प्रचार-प्रसार का अभियान चलाया गया जिसमें देश की जनता ने बढ़-चढ़कर भाग लिया। हिंदी का प्रचार-प्रसार करना राष्ट्र सेवा का काम बन गया। (मान 37)

संदर्भ

1. गोदरे, विनोद,प्रयोजनमूलक हिंदी, दिल्लीःवाणी प्रकाशन, 2022
2. दुबे, उदयनारायण, राजभाषा के संदर्भ में हिंदी आंदोलन का इतिहास . 1979
3. बाजपेयी, किशोरीदास . राष्ट्रभाषा का इतिहास . कोलकता :जनवाणी प्रकाशन . संवत् 2007
4. मुहम्मद, मलिक . राजभाषा हिंदी विविध आयाम . नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन . 1986
5. वर्मा, लक्ष्मीकांत . हिंदी आंदोलन . हिंदी साहित्य सम्मलेन प्रयागराज . 1964
6. गाँधी, मोहनदास करमचंद . सम्पूर्ण गांधी वाड्मय, खण्ड 13 . अहमदाबाद : नवजीवन प्रेस . 1971
7. मान, रामकंवर . हिंदी की त्रासदी . दिल्ली : तक्षशिला प्रकाशन . 2015

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, देव सुंदरी मेमोरियल महाविद्यालय, झाझा (बिहार) 811308

दलितों में स्वतंत्रता बोध- दलित उपन्यास के संदर्भ में

डॉ.उषाकुमारी.जे.बी

सारांशः स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद विशेषतः सत्तरोत्तर काल में दलितान्दोलन इतने जोरों पर हो रहा है कि संवैधानिक प्रावधान के बल पर वे जीवन के हर क्षेत्र में कदम रखने लगे। महात्मा फुले और डॉ. बी.आर.अंबेडकर के जीवनादर्श से वे इतने प्रेरित हुए कि उच्चवर्गों द्वारा अपने ऊपर दिखानेवाले अत्याचारों का सामना करने में वे काबिल रहे। सृजन क्षेत्र में पढे-लिखे दलितों के पदार्पण से दलितान्दोलन की प्रचुरता बढ़ गयी। अपने उपन्यासों में सामाजिक कान्ति के प्रचारक पात्रों का सृजन करके उपन्यासकार ने दलितान्दोलन में अपनी सक्रिय भागीदारी व्यक्तकी है।

बीज शब्द : दलितान्दोलन, दलित चेतना, मानव मूल्य, मूल्य च्युति, स्वतंत्रता बोध, मानवाधिकार, सामाजिक उद्धार, प्रतिशोध, सवर्ण मानसिकता, अमानवीय व्यवहार, सजगता ।

मूल्यबोध भारतीयता की एक खासियत है। समाज की सुस्थिरता एवं सुचारूपन के लिए नागरिकों में मूल्यबोध की मौजूदगी अनिवार्य है। दया, करुणा, स्नेह, सहयोग, परोपकार, त्याग, स्वतंत्रता, भ्रातृत्व आदि सद्गुणों से समाहित है मानवमूल्य । लेकिन कालगति के अन्तराल में, स्वार्थ लक्ष्य की पूर्ति के लिए मनुष्य अनेक मूल्यों की तिलांजलि देता हुआ दिखाई देता है। दुष्परिणाम यह निकलता है कि उचित - अनुचित समझने में मनुष्य असमर्थ रहा। मूल्यों पर आस्थाहीन होना ही हमारी संस्कृति का संकट है। मूल्यच्युति के बहाव में पड़े सवर्ण समाज ने अस्पृश्यता के सामाजिक संपर्क से बचकर रहने के लिए पिछडे लोगों को नगर की सीमा के बाहर एकांत स्थान पर रहने को विवश कर दिया । स्पष्ट है कि मूल्यहीनता का सबसे बडा एवं केन्द्रीय कारण पूँजीवादी संस्कृति है। इस मूल्य संक्रमण के ज़माने में महात्मा फुले, डॉ. बी.आर अंबेडकर जैसे महान लोगों ने अपने जीवन से साबित किया कि दलितत्व हीनत्व नहीं है। दलित चेतना से फलता-फूलता दलित साहित्य विशेषतः दलित उपन्यास इसका प्रत्यक्ष प्रमाण सिद्ध हुआ है।

जयप्रकाश कर्दम द्वारा लिखित 'छप्पर' उपन्यास के सूखा, रमिया, चन्दन, हरिया जैसे दलित पात्र अपनी दुरवस्था में भी जीवन के प्रति आस्था रखनेवाले दर्शायमान रहता है। यही आस्था मानवीय मूल्यों के प्रति रखने में भी वे बद्धश्रद्ध रहे। क्योंकि जीवन की असलियत से वे पहचान गये कि आस्था के बिना व्यक्तिपंगू होता है।

समाज की जागृति की चिंता में दिन-रात आराम के बिना प्रवृत्त रहनेवाले चन्दन को थोडा आराम करने का उपदेश हरिया देता है। लेकिन चन्दन की दृष्टि में अपनी सहजीवियों की समस्याओं से अनसुना रहना अपराध है। शिक्षित नागरिकों को देश की भलाई के लिए कुछ करने का अवसर नष्ट होने न देना उनका सहज धर्म है। इस विचार से प्रेरित होकर चन्दन दलित समाज की उन्नति के लिए अश्रान्त परिश्रम करता है। ताकि अपना ज्ञान, अपनी उर्जा और अपना स्वास्थ्य दूसरों के हित के लिए प्रयुक्त करने पर ही मानव, मानव कहने योग्य बन जाता है। समाज सुधार से सबका उन्नमन चाहने वाले चन्दन की राय में, "हमारा समाज सोया हुआ है। व्यक्तिहो या समाज, वह चाहे कितना ही समर्थ और बलवान क्यों न हो, यदि वह सोया हुआ है तो वह मुर्दे के समान निश्चल और निष्प्राण है। उसे कोई भी आसानी से खत्म कर सकता है।"[1] समाज के पतन से दुःखी चन्दन, स्वयं शिक्षित होकर, दूसरों को शिक्षा देकर, मानवाधिकार के लिए लडने के सहज धर्म का पालन करता है। चन्दन की प्रस्तुति में प्रत्यक्षतः मानव कल्याण चाहने वाले, मानवीय मूल्यों के प्रति आस्था रखनेवाले, स्वतन्त्रता चाहने वाले एक दलित नागरिक का जीवनादर्श अभिव्यक्तहोता है।

अपने लक्ष्य को साध्य बनाने के उपलक्ष्य में चन्दन ने दलित समाज के बच्चों को पढाने, सामाजिक उद्धार की योजनायें तैयार करने और उसे प्रवृत्त करने में सबका सहयोग पाने के लिए दलित युवकों को और माता-पिताओं को एकत्रित करके अपना विचार उनके सामने प्रस्तुत किया । चन्दन में निहित मानवीयता से अभिभूत होकर, सब लोगों ने उसके साथ रहने का वचन दिया। सवर्ण पुरुषों के अमानवीय व्यवहार के शिकार बनी कमला को भी सांत्वना देनेवाला चन्दन, सबकी दृष्टि में मानवीयता, आत्मीयता, सहृदयता और उदात्तता का मूर्त रूप है। अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ उठाने की प्रेरणा देने वाले चंदन के बारे में कमला सोचती है, "यह आदमी है या देवदूत । कितना सहृदय, कितना आत्मीय, कितना सहयोगी, आज की दुनिया में कहाँ देखते है ऐसे आदमी । आदमियों की भीड में बिलकुल अलग तरह का आदमी है यह।"[2] दृष्टव्य है कि मानवीयता एक ऐसी चीज़ है, जो दलितों की कमाई हडपनेवाले सवर्णों की अपेक्षा, सवर्णों के पैरों तले अभाव ग्रस्त जीवन बिताने वाले दलितों के मन में सर्वाधिक सुलभ दिखायमान रहती है। चन्दन के द्वारा मानवीयता के पोषण में अपना विचार पाठकों तक पहुँचाने में उपन्यासकार सफल हुए हैं।

जहाँ पूँजीवादी व्यवस्था में, दलित-जीवन के हर क्षेत्र में गुलामी व्याप्त रही, वहाँ मानवीय मूल्यों के प्रति रखी आस्था से दलितों के मन में क्रमश? स्वतन्त्रता बोध जागरित हुआ। अंग्रेजों के शासन में देशी सामन्त और विदेशी पूँजीपति के दोहरे शोषण से भारत की निम्न जातियाँ भयानक रूप से त्रस्त हो उठी थीं। जबकि देश की आज़ादी ने एक हद तक गुलामी जीवन बिताने वाले दलितों को स्वतन्त्रता प्राप्ति की ओर उन्मुख रखा। शिक्षा के ज़रिए प्राप्त जानकारियाँ उन्हें सामाजिक यथार्थता से अवगत करा देने में सक्षम रहीं। मोहनदास नैमिशराय द्वारा लिखित 'मुक्तिपर्व' उपन्यास में इसकी प्रखरता प्रचुर मात्रा में विद्यमान रही। नाम, पेशे, आचार-विचार में स्वतन्त्रता चाहने वाला वंशी, प्रस्तुत उपन्यास में, पूरे दलित समाज का प्रतिनिधि बनकर गुलामी के विरुद्ध आवाज़ उठाता है। वंशी के घर में चार सदस्य थे। कमानेवाला वंशी मात्र था। घर का खर्च और बेटे की पढाई का खर्च वंशी की सीमित आय से अधिक था। उसे सबसे अधिक परेशानी इस पर हुई कि दिन-व-दिन महंगाई बढ़ती जा रही है। फिर भी वह अकेला काम करके सबका निबाह कर रहा था। दूसरों के कहने पर भी वह सुनीत को अपने काम धंधे में जुडाना नहीं चाहता था। दलित समाज चिरकाल से पिता के रास्ते पर चलना बेटे का कर्तव्य मानता था। लेकिन वंशी इसके विरुद्ध था। बंशी के पिता नवाब अली वर्दी खाँ की हवेली में काम कर रहे थे। उनकी मृत्यु के बाद वंशी ने उस काम पर जाकर, उस परंपरा का पालन किया। बाद में अपने अनुभवों के आधार पर वंशी ने उस परंपरा का खण्डन करना चाहा। उसका निर्णय उपन्यासकार के शब्दों में उल्लेखित है, "पर जिस दिन सुनीत का जन्म हुआ था, उसी दिन वंशी ने यह निर्णय ले लिया था कि मेरे बाद मेरा बेटा नवाब की हवेली में काम नहीं करेगा।"[3]

दूसरों के अधीन काम करके जीवन बिताने की व्यर्थता महसूस कर, बेटे की उज्ज्वल भविष्य की चिन्ता में, दलित समाज को मुक्तिके मार्ग पर ले जाने की प्रेरणा से वंशी ने बेटे को आगे पढाने का निश्चय किया। स्वतन्त्रता बोध पर आधृत वंशी के निर्णय को पूरे दलित समाज तक पहुँचाकर, पूरे दलितों को ऐसा निर्णय लेने की प्रेरणा देने का महनीय कार्य उपन्यासकार ने यहाँ किया है। मूल्यबोध पर आधारित दलित चेतना की इस वृत्ति द्वारा, पेशे को जन्म के आधार पर निर्धारित की गयी सवर्ण मानसिकता पर ठोस प्रहार देने का उमंग वंशी को देश की आज़ादी से ही मिली।

नवाब साहब की प्रताडना में उनके घर की चाकरी छोड़कर चले गये वंशी के बदले, उसके पुत्र को अपनी हवेली पर काम करने बुलाने आये नवाब को आज़ादी का असली अर्थ समझाने वाले वंशी में दलित चेतना का मूर्ति भाव देखने को मिलता है। हुज़ूर, हुज़ूर पुकार कर, नवाब

से बातें करने वाला वंशी देश की आजादी के बल पर, हुज़ूर, हुज़ूर न कर सिर पर खड़े होकर बातें करने से नवाब दंग रह गये। वंशी के बर्ताव में आये परिवर्तन का कारण उसके ही शब्दों में निहित है, "मुझे गुलाम बने रहने की आदत नहीं नवाब साहब। वैसे भी देश अब आज़ाद हो गया। अब न कोई किसी का गुलाम है और न कोई किसी का मालिक। सब बरब्बर है।"[4] वंशी की राय में देश की स्वतन्त्रता से मतलब हर एक की स्वतन्त्रता है। अपने अधिकारों के प्रति दलितो में आयी सजगता यहाँ वंशी के द्वारा प्रस्तुत करने में उपन्यासकार सफल हुए हैं। वस्तुतः देश की आज़ादी से ही अधिकांश अनपढ दलित अपनी आज़ादी के बारे में सोचने और उसे कायम करने के संघर्ष में संगठित होने लगे। यहाँ तक कि जहाँ देश की आज़ादी ने शोषितों को आशावादी बना दी, वहाँ शोषकों को आशंकाकुल। स्वतन्त्रता की यह चाह दलितों की मूलवर्ती चेतना और मूल्यबोध का द्योतक ठहर गयी।

देश की स्वतन्त्रता से दलितों के मन में पनप उठी स्वतन्त्रता की चिन्ता ने सामाजिक परिवेश में भंग डाल दिया। हरिजन एक्ट के होते हुए भी, शोषितों पर अत्याचार करते रहने में पूँजीपतियों के हितार्थ काम करनेवाले सरकारी अफसर भी भागीदार रहे। किसी भी कीमत पर शोषकों से पूर्ण मुक्तिचाहने वाले दलित 'जस तस-भई सवेर' उपन्यास में स्वतन्त्रता बोध के उन्नायक रहते हैं। भगत और चौधरी को गिरफ्तार करके जेल ले जाते समय मनसुख आकर, भगत को गोली चलाकर मार दिया। अपनी पत्नी के घातक चौधरी की जान लेने की ताक में रहे मनसुख अब पुलिस के सामने खड़े होकर, उसपर भी गोली चलायी। मनसुख में आये बदलाव इतना स्तरीय निकला कि अब तक वह सवर्ण सभ्यता से डरता रहा। सवर्णी के सामने आवाज़ नहीं उठाया। लेकिन अपनी पत्नी की निर्दय हत्या पर उसके मानसिक-भाव और सोच-विचार में अन्तर आया। अब उसे चौधरी और भगत से तथा उसके अनुयायियों से कोई डर नहीं है। उनके सामने आवाज़ उठाने, हाथ उठाने और यहाँ तक कि उनकी जान लेने को भी वह लालायित है। शोषण की चरम सीमा पर वह महसूस हुआ कि चौधरी और भगत के जीते रहने से, दलितों की प्राणहानि आगे भी होगी । इनको जीने के लिए छोडना मूर्खता है। दलित नारियों की इज्जत बचाने, दलित समाज के अस्तित्व और अधिकार हासिल करने का एकमात्र उपाय उन दोनों के प्राण लेना समझकर ही मनसुख ने दोनों पर गोली चलायी । भगत वहीं मर गया । लेकिन गोली के निशान से बचे चौधरी पर फिर से गोली चलाने उतारू मनसुख को पुलिस ने गिरफ्तार कर दिया, तो मनसुख अपना इरादा दारोगाजी से व्यक्त करता है -" छोड दो दीवानजी, इन पापियों ने मेरी पत्नी की हत्या की है। मेरे बच्चों को बेघर कर दिया है। मैं इन्हें नहीं छोडूंगा। उसके बाद मैं समर्पण कर दूँगा।"[5] दलित समाज की स्वतन्त्रता के लिए निजी जीवन त्यागने को तैयार होनेवाला मनसुख दलित चेतना का संवाहक बनकर, सबके मन में स्वन्तत्रता-मोह पैदा करने का दायित्व स्वयं निभा रहा है। यहाँ सवर्णी से प्रतिशोध करने को उद्बुद्ध दलित मन की चेतना पर उपन्यासकार सत्य प्रकाश ने दृष्टि डाली है।

शोषण चक्र में पड़े दलितों को स्वतन्त्रता बोध इतना झकझोर कर देता है कि सवर्णे के आगे हाथ जोड़कर रहे दलित अब सवर्णे के आगे हाथ उठाने का साहस दिखाने लगा ताकि स्वतन्त्रता मानवीय मूल्यों में सबसे प्रथम आती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. छप्पर - जयप्रकाश कर्दम - पृ-सं-77
2. वही - पृ-सं-51
3. मुक्तिप्रर्व - मोहनदास नैमिशराय - पृ-सं- 60
4. वही-पृ-सं- 38
5. जस तस भई सवेर - सत्य प्रकाश- पृ-सं- 127

सह-आचार्य, हिंदी विभाग

महात्मा गाँधी कॉलेज

तिरुवनंतपुरम

शब्द जो भीतर ही भीतर बजते रहते हैं - निर्मला पुतुल की कविता

डॉ. विजयकुमार.ए. आर

भारत के जाने-माने साहित्यकार, समाजशास्त्री और अन्य लेखकों ने आदिवासी जीवन और संस्कृति पर कविताएँ, उपन्यास, नाटक, निबंध आदि लिखे हैं। 1975 के बाद की कविताओं में समाज के सभी क्षेत्रों की बहुआयामिता का चित्रण देख सकते हैं। विशेष रूप से कविता जीवन की बहुआयामी यथार्थ को सहज ढंग से अभिव्यक्त करती है। शायद जीवन की अभिव्यक्तिमें जो बदलाव दिखाई पड़ता है उसके लिए एक हद तक परिवेश ही जिम्मेदार है। परिवेश के अनुसार जनता की चित्तवृत्ति बदलती है। इसके अनुसार रचनात्मकता का स्वरूप भी बदलता है। साहित्य का एक उद्देश्य यह है कि परिवेश के यथार्थ से अवगत कराना और उसे विभिन्न दिशाओं में प्रशस्त करना। पूरे भारत के विभिन्न राज्यों के सांस्कृतिक आधार अलग-अलग है। लेकिन सभी राज्यों के आदिवासी जीवन में सांस्कृतिक एकरूपता अवश्य देखने को मिलता है। सभी शहरों और गांवों में रुचि, दृष्टिकोण और मूल्य बदलता रहता है। लेकिन आदिवासियों के जीवन में ठोस परिवर्तन दिखाई नहीं देता है। हमारे समाज में अनेक प्रकार के दर्शन, जाती और धर्म जड़ें जमाई है लेकिन आदिवासियों तक उनकी जड़ें नहीं पहुँची है। उनके जीवन को गहराई से परखे बिना उनकी चेतना की परिभाषा देना अनुचित होगा। धन, शिक्षा, सत्ता, धर्म, संस्कृति सभी क्षेत्रों में वंचित और उपेक्षित और बिखरे हुए वर्ग को परिभाषित करना अत्यंत मुश्किल कार्य है। "आदिवासी साहित्य वन संस्कृति से संबंधित साहित्य है। आदिवासी साहित्य वन- जंगलों में रहने वाले उन वंचितों का साहित्य है जिनके प्रश्नों का अतीत में कभी उत्तर नहीं दिया गया। जिनके आक्रोश पर मुख्य धारा के समाज व्यवस्था ने कान ही नहीं धरे। यह गिरी कन्दराओं में रहने वाले अन्याय ग्रस्तों की क्रांति का साहित्य है। सदियों से जारी कठोर न्याय व्यवस्था ने सैकड़ों पीढ़ियों को आजीवन वनवास दिया। उस आदि समूह का मुक्ति साहित्य है आदिवासी साहित्य। वनवासियों का क्षत जीवन जिस संस्कृति की गोद में छिपा रहा है उसी संस्कृति के प्राचीन इतिहास की खोज है आदिवासी साहित्य। आदिवासी साहित्य इस भूमि में प्रसूत आदिम जाति की वेदना तथा अनुभव का शब्द रूप है।"[1] आदिमता के मर्म को समझने के लिए भारत की जाति व्यवस्था पर विचार करना अनिवार्य है। हमारी जाति व्यवस्था राजनीति चेतना से दूर है। हिंदी साहित्य में कुछ कविताएँ ऐसे सवाल उठाती है, जो हमारे विकास यात्रा का इतिहास लिखती हैं वह इन सवालों के सामने बेजुबान खड़े हैं। "तुम्हारी भाषा में बोलता वह कौन है?/जो तुम्हारे भीतर बैठा कुतर रहा है/तुम्हारे विश्वास की जड़ें?/दिल्ली की गणतंत्र झाँकियों में/अपनी टोली के साथ नुमाइश बनकर कई कई बार/पेश किए गए तुम/पर गणतंत्र नाम की कोई चिड़िया/कभी आकर बैठी तुम्हारे घर की मुंडेर पर?"[2]

निर्मला पुतुल जी की कविता में ऐसे कई सवाल गूंजती रहती है। इतनी प्रगति के बावजूद हमारे समाज में जाति ही उत्पीड़न और दमन का आधार है, यह शर्म की बात है। प्रतिबद्ध कविता वही है जो संवेदनशील मन से निकलती है। ऐसी कविताओं में अनुभूति की गहराई और सच्चाई होती है और वही अनुभूत यथार्थ का संप्रेषण कराएगी। आदिवासियों के जीवन में प्रकृति का महत्वपूर्ण स्थान है। कहने के लिए तो वे प्रकृति की गोद में है, यह भी कहा जाता है कि प्रकृति के सभी भावों को निकट से पहचान का अवसर भी उन्हें मिलता है। लेकिन यह सब ऐसे सुंदर शब्द है जो सत्ताहीन वंचित समाज को सजाने के लिए प्रयुक्तकरते हैं। आदिवासी समाज में अधिकतर वर्ग अशिक्षित है। कई लोग अंधविश्वास, कर्मकांड आदि में फंसा हुआ है। यद्यपि इनमें परिवर्तन का आग्रह और समय के साथ चलने की इच्छा है, फिर भी उनकी इच्छाएँ कुछ बुनियादी आवश्यकताओं के आगे असहाय है। जल, जंगल और जमीन में उनका जीवन पलता है और सारी

समस्याएँ और संकट जल जंगल और जमीन में सिमटे पड़े हैं। आदिवासियों की जिंदगी और कला- संस्कृति स्वयंस्फूर्त है। उनकी कलात्मक जिंदगी में उत्साह, आनंद और लय है। यह वास्तव में अपनी समस्याओं का समाधान ढूंढने का रचनात्मक तरीका है जो पूर्णतः अपने अनुभवों से निर्मित है।

हिन्दी साहित्य के वर्तमान काव्य जगत में निर्मला पुतुल का महत्वपूर्ण स्थान है। उनका जन्म झारखंड में हुआ था। उन्होंने अनुभूत यथार्थ को मातृ भाषा में अभिव्यक्तिदी है। वे उन बेजुबान लोगों की जिंदगी और स्वत्व संघर्ष के बारे में लिखती है जो हाशिए पर खड़े हैं। हमारे समाज में प्रगतिशील लोग मुख्य धारा के साथ चलने के लिए मजबूर हो गए हैं। निर्मला पुतुल की कविताएँ बिल्कुल साधारण सी लगती हैं लेकिन अभिव्यक्ति या प्रतिक्रिया के स्पंदन धीरे-धीरे नगाड़े की तरह बजने लगता है। निर्मला पुतुल की कविताओं में आदिवासी समाज का यथार्थ,समय की सच्चाई और समाजशास्त्र की गति की अभिव्यक्तिकई रूपों में हुई है। आदिवासी जीवन पर केन्द्रित कविताओं में ऐसे प्रतीकों और बिंबों का चित्रण हुआ है जो हमें उस समाज की जीवन शैली से अवगत कराते हुए उनकी परम्परा और संस्कृति के रूप में सामने आते हैं। साहित्य के साधारण घिसी पिटी रास्तों से हटकर चलने के कारण उसकी अलग पहचान है। अनुभूति की सच्चाई और साहित्यिकता उनकी कविता को आकर्षक बनाती है। उनकी सामाजिकता और राजनीतिक चेतना कविता को अलग पहचान देती है। सूक्ष्म भावों के चित्रण में भी सामाजिकता और गहरी सांस्कृतिक अंतर्दृष्टि है।

समकालीनता और उसके बाद की सूक्ष्म दृष्टि आम आदमी के शब्द और स्वत्व को केंद्र में लाया। अक्षरों के बीच स्वत्व संबंधी सवाल और समस्याएँ अनायास बहते हैं। निर्मला पुतुल द्वारा चित्रित राजनीतिक विचारों के बीच जीवन के अनुभव इस हद तक मिले हुए हैं कि पाठक सवालों और समस्याओं के समाधान ढूँढने के लिए मजबूर हो जाएँगे। यही समझना चाहिए कि आदिवासी जीवन की मजबूरियाँ और अभाव ऐसा कोई उत्सव नहीं है जो सुन्दर अक्षरों में सजाकर साहित्य की किसी विशेष धारा को आगे ले जाए। उनका उद्देश्य है अपने स्वत्व पर अटूट विश्वास जगाना। नए अवबोध और जिजीविषा एक साथ मिलकर उनकी रचनाएँ जीवन का सही दस्तावेज बन जाता है। जो जाति और धर्म के परे हैं। कवि अपने अनुभवों के केंद्र में खड़े होकर भाषा को सहज बनाते हैं। यहाँ कवि भाषा के बाहर नहीं है उसके भीतर है। उनके सामाजिक आदर्श सामाजिक विमर्श भी है। निर्मला पुतुल जी किसी आदर्श को आगे रखकर अलग नहीं खड़ी है।

आदिवासी, दलित लेखन में सबसे प्रमुख है, अपने शरीर को केंद्र में रखकर नए सौंदर्य चेतन को विकसित करना। निर्मला पुतुल की बाहामुनी नामक कविता में मेहनती आदिवासी स्त्री का चित्र इस तरह प्रस्तुत करती है। “तुम्हारे हाथों में बने पत्तल पर भरते हैं पेट हजारों/पर हजारों पत्तल भर नहीं पाते तुम्हारा पेट/कैसी विडंबना है की / जमीन पर बैठ सुनती हो चटाइयाँ/और पंखा बनाते टपकता है /तुम्हारे करियाए देख से टप-टप.. पसीना”[3]

ऐसी स्त्रियाँ जो अलग पहचान बनाना चाहती है अभिव्यक्ति के क्षेत्र में देहवाद से मुक्ति हो यही सबसे प्रमुख है। “वह अपनी एक अलग पहचान बनाना चाहती है। वह घर, प्रेम और जाति से परे अपनी जमीन तलाशती है। जो सिर्फ उसकी हो। इन कविताओं के माध्यम से निर्मला पुतुल स्त्री को सिर्फ देह समझने वाली मानसिकता का खंडन करती है। कवयित्री आदिवासी स्त्रियों के साथ होने वाले अत्याचार और शारीरिक शोषण को सबके सामने लाती है। तथाकथित सभ्य समाज में रहने वाले पुरु ष उसकी तरफ ललचाई हुई आंखों से उनके देह को निहारते रहते हैं।”[4] उनके साहित्य जिन्दगी और उसके तीखे यथार्थ का साहित्य है। निर्मला पुतुल जी ने आदिवासी जीवन की वास्तविकता, शोषण, और पीड़ा को नजदीकी से परखती है। कवयित्री पूछती है कि क्या आदिवासियों की प्रगति और विकास का मतलब उनकी भूमि और अस्मिता को उजाड़ देना है। प्रकृति का सहयोगी अस्तित्व का अभ्यस्त आदिवासी जीवन उच्च- नीच, छल-कपट आदि से दूर रहते हैं। आदिवासी लोग चिल-चिलाती धूप में काम करने पर भी नहीं थकते क्योंकि वे प्रकृति के गोद में रहते हैं। आदिवासी स्त्री को अभाव, गरीबी और भूख की बडवाग्नि में जूझना

पड रहा है। "तुम्हारे हाथों बने पत्तल पर भरते हैं पेट हजारों/ पर हजारों पत्तल भर नहीं पाते तुम्हारा पेट/जिन घरों के लिए बनाती हो झाड़ू/उन्हीं से आते हैं कचरे तुम्हारी/बस्तियों में। (नगाड़े की तरह बजते शब्द)"[5]

उनकी कला और संस्कृति दिखावा, छल-कपट और आडंबर से दूर रहती है। आदिवासी साहित्य के पास अपना कोई सौंदर्य शास्त्र नहीं है जो मुख्य धारा के नियमों का अनुसरण करते हैं। इसलिए मजबूर होकर मुख्य धारा साहित्य के साथ चलते हैं। जाने माने समीक्षकों ने आदिवासी कविता की समीक्षा की है। लेकिन यह उतना प्रभावी नहीं है क्योंकि वह प्रत्येक घटना या प्रतीकों पर विचार प्रकट करते हैं। उन्हें सहज भाषा का अर्थ अच्छी तरह समझ में नहीं आते हैं। इतनी गहराई तक जाकर अध्ययन नहीं करते हैं। इसीलिए सुविधानुसार उनके साहित्य को एक विशेष धारा के भीतर ले जाते हैं और संस्था के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। निर्मला पुतुल ने अपनी कविताओं में अपने अनुभव की अभिव्यक्ति के लिए बिंबों और प्रतीकों का प्रयोग किया है। पौराणिक साहित्य समीक्षकों ने जिस धारा का भरण पोषण किया है नया प्रतीक और बिंब इनका विरोध करते हैं। क्योंकि आदिवासी रचनाकारों के सृजन क्षेत्र में जो मिथक और विचार है वह परम्परागत विमर्श से मेल नहीं खाते हैं। उनके मिथकों की निर्मिति, परिभाषा और स्वरूप पर विचार करने पर ही अध्ययन सार्थक बन सकता है।

सवर्ण द्वारा संचालित समाज व्यवस्था में गुलामी और मजबूरी का जीवन जीने वाले तिरस्कृत परिवेश के जीवन में स्वत्व की नई परिभाषा हलचल मचाने लगते हैं। लेकिन अपनी जिंदगी और परिवेश को सहज भाषा में प्रस्तुत करने के कारण निर्मला पुतुल जी की कविता लोकगीत की तरह आदिवासी जीवन के निकट आ गया है। आदिवासियों के समकालीन जीवन दुनिया के कोने-कोने में पहुंचने लगे हैं। निर्मला पुतुल की कविता में चित्रित जीवन दृष्टि को मुख्य धारा साहित्य के पारिभाषिक शब्दावली के कम शब्दों में विश्लेषित करना मुश्किल है। हमारे साहित्य जगत में अधिकांश संवाद, व्यस्त जिंदगी के उत्तरदायित्वों के ब्योरे प्रस्तुत करते हैं। कभी कभी उसमें उच्च-नीच, अच्छे, बुरे के आंकड़े होते हैं। लेकिन आदिवासी जीवन में ऐसे उच्च नीच का भाव नहीं है। वहाँ सुख-दुख बाँटने वाले सरल और सहज मानव होते हैं। यहाँ यूरोपीय सभ्यता को केंद्र में रखकर मानवीय संबंधों की व्याख्या करते हैं। इसलिए हर मनुष्य अपने तर्क या अपने सूत्र से वंचित है। हमारे समाज में जो सहज दर्शन है। वह अब महान सभ्यता के उप-विभाग बन गया है। अगर हम इस गलती को सुधारने के लिए तैयार नहीं होते हैं तो समाज में हमारी भागीदारी नहीं होगी।

संदर्भ - सूची

1. आदिवासी साहित्य यात्रा, डॉ.रमणिका गुप्ता पृ.संख्या 24
2. नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द कविता, निर्मला पुतुल।
3. समकालीन हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श (डॉ पंडित बन्ने, अमन प्रकाशन, कानपुर 2019)
4. आलेखः निर्मला पुतुल की कविताओं में आदिवासी स्त्री/ विजयश्री सातपालकर, अपनी माटी, अंक 33, सितंबर 2020(www.apnimati.com)
5. नगाड़े की तरह बजते शब्द (निर्मला पुतुल)

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. आदिवासी साहित्य यात्रा डॉ रमणिका गुप्ता।
2. समकालीन हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श डॉ. पंडित बन्ने, अमन प्रकाशन 2019
3. नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ,, 2004
4. अपनी माटी -अंक 33 सितंबर 2020
5. आदिवासी विकास यात्रा - रमणिका गुप्ता, राधाकृष्ण प्रकाशन।

हिंदी विभाग, सेंट मेरीस कालेज , सुल्तान बत्तेरी

‘मैं पायल’ में चर्चित किन्नर समस्याएँ

डॉ. गायत्री.एन

किन्नर शब्द सुनते ही हमारे दिमाग में समाज से बहिष्कृत लोगों की छवि बनने लगती है। ये लोग शादी, बच्चे के जन्म के अवसर पर, बसें, ट्रेन सड़क या किसी पार्क में पैसे मांगने को क्यों मजबूर है। क्योकि मनुष्य के रूप में जन्म लेने के बावजूद भी किन्नर दयनीय जीवन जीने के लिए मजबूर है। किन्नरों के साथ होने वाले सामाजिक भेदभाव से उनका मनोबल टूटता है। उनके लिए न रोजगार की व्यवस्था है और न ही उनकी खुद की कोई परिवार जैसी इकाई है अगर इकाई है भी तो उनकी अपनी बनाई हुई है। समय -समय पर दुनिया भर के विभिन्न मंचों पर मानवाधिकार उल्लंघन और मानवधिकारों की बहतर स्थिति की चर्चा की जाती है, लेकिन कई मूलभूत सुविधाओं से वंचित और समाज की प्रताड़ना के शिकार किन्नरों की स्थिति पर बहुत कम लोगों का ध्यान जाता है।

किन्नर समाज के लोगों अपनी अलिंगी देह को लेकर जन्म से मृत्यु तक अपमानित, तिरस्कृत और संघर्षमयी जीवन व्यतीत करते हैं तथा आजीवन अपनी अस्मिता की तलाश में ठोकरें खाते है। हिन्दी साहित्य में लिखे उपन्यासों में देखने पर सहज ही ज्ञात होता है कि इन किन्नरों की जीवन कितना कठिन और संघर्ष से भरा है। महेन्द्र भीष्म की मैं पायल उपन्यास में एक गीत है जो किन्नरों के सामाजिक यथार्थ को दर्शाने की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं- “अधूरी देह क्यों मुझको बनाया बता ईश्वर/तुझे ये क्या सुहाया किसी का प्यार हूँ/न वास्ता हुं न तो मंजिल हू मैं न रास्ता हुँ/कि अनुभव पूर्णता का हो न पाय/अजब यह खेल रह-रह धुप/छाया।

किन्नर जीवन पर केन्द्रित इस गीत में अनेक मर्मपीड़ा का बयान साफ दिखाई देता है। किन्नर गुरु पायल सिंह के वास्तविक जीवन और उनके द्वारा किये गए संघर्ष पर आधारित इस उपन्यास में पूरे किन्नर समाज के यथार्थ को साफ देखा जा सकता है। एक किन्नर के जन्म से लेकर अंत तक जो कुछ उन्हें सहना पड़ता है उसका मार्मिक चित्रण इस उपन्यास से मिलता है। पायल सिंह ने अपने परिवार से,समाज से बहुत अधिक संघर्ष किया है।किन्नरों की सारी समस्या पायल सिंह के द्वारा महेन्द्र भीष्म ने बताया है। सारी समस्याओं को दूर कर पायल आगे चलना चाहता है।

किन्नर अपने जीवन में बहुत सारी समस्याएँ झेलते हैं।उसमें एक है,पारिवारिक समस्या।भारतीय पारिवारिक संदर्भ की दृष्टि से परिवार समाज की एक इकाई है। परिवार में बच्चे को जन्म से संस्कार, मर्यादा व जीवन जीने की शिक्षा दी जाती है। मानव समाज में परिवार एक बुनियादी तथा सार्वभौमिक इकाई है। ‘मैं पायल’ उपन्यास में जुगनी यानि पायल सिंह के परिवार के साथ संबन्ध कैसे रहा है तथा उनके प्रति परिवारवालों की क्या सहयोग रहा है, किन-किन समस्याओं से गुज़रे आदि का यथार्थ चित्रण महेन्द्र भीष्म ने दिया है। बचपन से अपने ही घर में जुगुनी ने संघर्ष और कष्ट झेला है। जब उसका जन्म होता है पुत्र की उम्मीद में लड़की हुआ तो एक अप्रिय आवाज़ में राम बहादुर के एक और लड़की हुई। इसका सारा दोष माँ पर पड़ता है। जुगनी को अपनी दैहिक सच्चाई के बारे में कुछ पता नहीं था। लेकिन जब भी पिता दारु के नशे में होता है तो कोसते हैं कि ये जुगनी हम क्षत्रिय वंश में कलंक पैदा हुई है, साली हिजडा कहता है तब उस छोटे मन में बहुत पीड़ा होती है। जुगनी का सहारा सिर्फ उसकी माँ और बहनें थीं । पिता सिर्फ भाई से प्यार करता था। पिता अपने सामाजिक अपवाद से बचने के लिए जुगनी को जुगनु बनने के लिए कहता है। पिता के डर पायल जुगनी से जुगनु बनता है। लेकिन जब एक दिन जुगनु को फिर से जुगनी के कपड़े

में देखने की इच्छा के कारण बहनों ने उसका शृंगार किया। लेकिन दारू पीकर उसके पिताजी वहाँ अचानक आता है और उसे पीटता है और मारने की कोशिश भी करता है। वहाँ से उसे माँ और बहनें बचाती हैं और जुगनी अपने घर से भाग जाती है।

यहाँ हम देखते हैं कि केवल हिजड़ा होने के कारण जुगनी को अपने ही घर से क्या -क्या सहना पड़ता है। जुगनी के पिता केवल सामाजिक अपवाद के बारे में सोचता है लेकिन अपनी बेटी के बारे में सोचता नहीं। हिजड़ों के माँ बाप नहीं सोचते हैं कि बच्चे हिजडे होने में बच्चों का कोई कसूर नहीं इसमें सिर्फ और सिर्फ माँ -बाप का ही कसूर होता है। जब हिजड़ों को माँ-बाप के सहारे की आवश्यकता है, उस समय में ही उन्हें अपने ही घर से भागना पड़ता है। किन्नर या हिजड़ा होने के कारण से बाप का लाड -प्यार और घर में खुशी से रहने का मौका इन लोगों को नहीं मिलता है। जन्म लेते ही हिजडा होने के कारण परिवार से उन्हें बहुत अधिक झेलना पड़ता है। लेकिन जब समाज में आता है तो समाज से भी बहुत झेलना पड़ता है।

भारतीय समाज में हिजडा समूह को लेकर सच्चाई कम और भ्रांतियाँ ज्यादा फैलाई गई है। शारीरिक -मानसिक संरचना से लेकर उनकी सामाजिक संरचना के बारे में बहुत कम लोगों को पता है। लेकिन मैं पायल उपन्यास में सभी प्रकार के प्रश्नों का उत्तर देते हुए थर्ड जेंडर के लिए इस समाज में मानवीय गरिमा की माँग करती है। अधिकांश थर्ड जेंडर बच्चों के सामने आजीविका का ही प्रश्न सबसे महत्वपूर्ण होता है। परिवार तथा समाज में किए जा रहे भेदभाव पूर्ण व्यवहार के कारण ऐसे बच्चे अपनी पढ़ाई पूरी नहीं कर पाते। यह भी उनकी कष्टताओं का मुख्य कारण बनता है। समाज उनके साथ दोहरा व्यवहार करता है। लोग उनको ताने मारते, उपेक्षा करते हैं।

महेन्द्र भीष्म के 'मैं पायल' उपन्यास में जब पायल अपने घर से भाग जाता है तो उसे घर से भी बहुत बुरा व्यवहार समाज से मिलता है। उनका मिलन कुछ अच्छे लोग और कुछ बुरे लोगों से होता है। समाज के लोगों की नज़रिया अलग -अलग होता है। कुछ लोग हिजड़ों को केवल भोगविलास की नज़र से देखता है और कुछ लोग उनके लिए सहारा बन जाता है। लोगों की अजीब व्यवहार से डर कर जुगनी फिर से जुगनू बन जाता है क्योंकि वह मनुष्य के प्रवृत्तियों से डरता है। हिजड़ों को डर के इस समाज में जीना पड़ता है। कोई भी सोचता नहीं कि वह भी हमारी तरह है और स्वतंत्र रूप से जीने की हक उन्हें भी है।

कपड़े और खाने-पीने से लेकर स्कूल तक में हिजड़ों के साथ पक्षपात करता जाता है। इसी कारण उन्हें लगता है कि परिवार की तरह समाज भी उनका कोई मूल्य नहीं करता है। जब पढ़ाई छोड़ कर काम करने के बारे में सोचता है तो वहाँ पर भी कठिनाई होती है। स्कूल से आरंभ कर काम करने की जगह तक संघर्ष ही होता है। पायल भी बहुत संघर्ष के अंत में एक किन्नर गुरु बना है।

हमारे समाज के कारण ही कोई भी किन्नर को संघर्ष से जीवन बिताना पड़ता है। सामान्य समाज के लोग किन्नर सन्तान का पालन पोषण करने में स्वयं को कलंकित होना मानता है, जबकि समाज विकलांग, मंदबुद्धि, रोग ग्रसित बच्चों का पालन-पोषण प्यार से करता है। इसी तरह अगर किन्नरों को भी सही परवरिश की जाए तो वही बच्चे आगे चलकर समाज में सक्षम होकर समाज के लिए ही एक उदाहरण के रूप में प्रस्तुत हो सकते हैं। इसके विपरीत समाज उन्हें अपनाने से दूर भागते है। इसी कारण वे लोग समाज में आगे आ ही नहीं सकते हैं और संघर्ष भरी जीवन बिताते हैं।

समकालीन हिन्दी साहित्य में महत्वपूर्ण रचनाकार श्री महेन्द्र भीष्म ने अपने उपन्यासों में विभिन्न प्रकार की समस्याओं का जीवन्त चित्रण किया है।सामाजिक समस्याओं से उभरनेवाली उनकी रचनाओं में किन्नर संघर्ष और किन्नर

विमर्श संबंधी चित्रण मिलता है। 'मैं पायल' किन्नर विमर्श पर आधारित उनका दूसरा उपन्यास है जिसका प्रकाशन 2016 में हुआ था। प्रस्तुत उपन्यास में महेन्द्र भीष्म ने पायल सिंह को बचपन से लेकर उसका वैवाहिक जीवन तक किन-किन मुज़ीबतों से गुज़रना पड़ा है इसका यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास के माध्यम से हमें न सिर्फ पायल की समस्याएँ देखने को मिलती हैं बल्कि इसमें तृतीय लिंगी औलाद के प्रति एक माँ की ममता और पिता का पितृसत्तात्मक आक्रोश देखने को भी मिलता है। किन्नर को सर्वप्रथम घर से तिरस्कृत, उपेक्षित किया जाता है, अगर वहीं अच्छी शिक्षा दी जाए तो वे ताली बजाने का पेशा शायद ही अपनाएँगे। सामान्य समाज के लोगों ने अपने स्वार्थ के खातिर इन लोगों को हाशिये पर धकेल दिया तथा कई सालों से इनके साथ अमानवीय व्यवहार करते नज़र आ रहे हैं। लेकिन पायल जैसी संघर्षशील पात्र से बहुत कुछ सीखने को मिलता है। इस प्रकार कह सकते हैं कि आज किन्नर को समाज में अपनाने की शुरुआत किन्नर के पैदाइशी परिवार को करनी चाहिए। उनको शारिरिक और मानसिक रूप से प्रताड़ित करके विस्थापित न करें।

'किन्नर' कहलाना किसी को भी अच्छा नहीं लगता वे भी हमारी तरह अपनी माँ की कोख से जन्मे अपने पिता की संतान है। वे ज्यादा नहीं माँग रहे है, हमें किन्नर नहीं, इंसान समझा जाए। वे समाज की मुख्यधारा से जुड़ना चाहते हैं। देश के विकास में अपना योगदान सुनिश्चित करना चाहते हैं। जरूरत है उनकी बुनियादी आवश्यकताओं को समझने की। विश्व में तीस प्रतिशत किन्नर ऐसे हैं, जो मामूली ऑपरेशन द्वारा पुरुष या स्त्री बनाए जा सकते हैं। आवश्यकता है जागरूकता की, शिक्षा की और उनको नैतिक समर्थन देने की उन्हें त्यागने की नहीं, अपनाने की जरूरत है।

14 अप्रैल, 2015 को मानवीय उच्चतम न्यायालय ने किन्नरों को स्त्री और पुरुष से अलग तीसरे लैंगिक समूह की तरह मान्यता देने का ऐतिहासिक फैसला दिया है, जो स्वागत योग्य है, न केवल किन्नर समाज के लिए बल्कि समस्त मानव जाति के लिए मानवीय उच्चतम न्यायालय ने अपने निर्णय में सरोकार को दिशा निर्देश देते हुए कहा है कि वे इस तीसरे लैंगिक समूह को समाज का एक उपेक्षित और पिछड़ा वर्ग मानकर उसकी भलाई के लिए विशेष सुविधाएं उपलब्ध कराए। मानवधिकार संगठनों की माँग पर विश्व के कई देशों में किन्नरों की भलाई के लिए कानून बनाए जा रहे हैं और सामाजिक रूढ़ियों को तोडने का भरपूर प्रयास किया जा रहा है। हमारे देश के संविधान में भी सभी नागरिक के लिए समान अधिकार का प्रावधान है। प्रत्येक को बिना किसी भेदभाव के सारे अधिकार प्राप्त है, जो संविधान में बताए गए हैं । किन्नरों को भी इन अधिकारों से लिंग की वजह से वंचित नहीं किया जा सकता।किन्नरों को अच्छी नजर से न देखने का नजरिया बदलना होगा। उनके साथ मानवीय नज़रिये की जरूरत है और यह तभी संभव हो सकेगा जब एक तो उनके प्रति समाज का नजरिया बदले और दसरे उन्हें समाज में एक उपयोगी भूमिका तथा सम्मानजनक स्थान मिले।

सन्दर्भ सूची

1. मैं पायल महेन्द्र भीष्म अमन प्रकाशन-2016
2. स्त्री अपेक्षित -प्रभा खेतान - हिंदी पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड-2002
3. किन्नर विमर्श साहित्य के आईने में - डॉ. इकरारअहमद-वाड्मय बुक्स-2017
4. तीसरी ताली - प्रदीप सौरभ- वाणी प्रकाशन 2011
5. विमर्श के विविध आयाम डॉ.अर्जुन चौहान-वाणी प्रकाशन - 2014
6. थर्ड जेंडर :कथा आलोचना- डॉ.एम.फ़िरोज़ खान-अनुसन्धान पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स 2017

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
महात्मा गाँधी कॉलेज, तिरुवनन्तपुरम

शब्दकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त का साहित्य : आधुनिक संदर्भ में एक पुनर्विचार

डॉ. गोपकुमार.जी

प्रस्तावना : युग कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त के सांस्कृतिक दृष्टिकोण के पुनर्विचार करने की प्रवृत्ति समकालीन संदर्भ में महत्वपूर्ण बात है। क्योंकि आज हम भारतीय संस्कृति के बहुआयामी तत्वों को गहराई से सीखने का और समग्रता से अध्ययन करने के गंभीर प्रयासों में लग रहे हैं। अतः वैश्वीकरण और बाज़ारीकरण के इस जटिल समय में भारतीय संस्कृति और उसकी गरिमा नई पीढ़ी को अवगत कराकर उन्हें आगे की ओर अग्रसर करने का काम गुप्त की रचनाओं के पुर्नवाचन से संभव है। इसी कार्य की पूर्ति के लिए यहाँ उनकी कुछ प्रसिद्ध रचनाओं का पुनर्विचार किया गया है।

संस्कृति और उनकी परिभाषा : संस्कृति का अर्थ समग्र जीवनशैली से है। इसके मूल में सामाजिक व्यवस्था है जो व्यक्ति से लेकर समाज तक फैली हुई है। संस्कृति की परिभाषा को किसी सीमित दायरे में रखकर अध्ययन करना बहुत कठिन है। यह मनुष्य की विविधता और एकता का एक विशाल मिश्रण है। इसमें अंतरराष्ट्रीय और अतः विषय परिप्रेक्ष्य शामिल है। अतः हम कह सकते है कि संपूर्ण मानव जीवन ही संस्कृति का आधारभूत शिला है।

प्रारंभिक संस्कृति अध्येताओं में प्रसिद्ध ई बी. टइलर की परिभाषा उल्लेखनीय है। उनके अनुसार संस्कृति जटिल है जिसमें एक समाज के रूप में समाहित ज्ञान-विज्ञान, कला, नैतिकता कानून, कौशल और रीति-रिवाज़ तथा आदतें शामिल है। (ई. बी टइलर -प्रिमिटीव कलचर)। इसी प्रकार 'रैमण्ड विलयम' और 'आँड्रू' मिलूनर भी संस्कृति की परिभाषा को समाज जीवन से जोड़कर कहा है।

पाश्चात्य विद्वानों की तरह भारतीय विद्वानों ने भी संस्कृति के विभिन्न अंगों की खोज की है। वे संस्कार और सभ्यता को अनुपूरक बता कर संस्कृति की परिभाषा न देकर उसकी विशेषताओं पर अधिक ध्यान दिये है। श्री रामधारि सिंह दिनकर भी संस्कृति के जड़ का अध्ययन किया। उन्होंने 'संस्कृति के चार अध्याय' नामक किताब में संस्कृति का लक्षण न बताकर उसके गुणों का वर्णन करके उसे आत्मा का गुण माना है। वे कहते हैं कि 'संस्कृति जीवन जीने का तरीका है और यह तरीका युगों से जमा होकर इस समाज में छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते है।' (दिनकर जी - संस्कृति के चार अध्याय से) अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि संस्कृति मानव जाति द्वारा समाहित सभी प्रकार के मूल्यों का योग है। प्रत्येक संस्कार का अन्य संस्कारों से भिन्न दिखाई देना स्वाभाविक बात है।

संस्कृति एक सतत प्रवाह है, इसमें मानवीय विचार, रुचि और आकांक्षाएँ आपस में गूँथी हुई है। संस्कृति वास्तव में विविधता का मिश्रण है और यह एक प्राचीन अवधारणा भी है। हम इसके माध्यम से युगों से चले आ रहे हैं। संस्कृति मूर्त और अमूर्त धारणाओं का खजाना है जिसमें प्रत्येक जन -जाति की अस्मिता को सुरक्षित रखती है।

संसार के सबसे प्राचीनतम संस्कृतियों में एक है भारतीय संस्कृति। वेद और पुराण हमारी संस्कृति का प्राण तत्व है। वेद और उपनिषद की रचना भारत

में उस समय हुई जब परिचम के लोग जंगल में रहते थे। हमारे पूर्वज नदी तट पर सामाजिक जीवन आरंभ किया और कृषक संस्कृति को जन्म भी देना शुरु किया। आगे होकर यह कृषि संस्कृति कला और साहित्य के जन्म और विकास का कारण भी बन गया।

संस्कृति के आदान- प्रदान के अनेक माध्यम है। इसमें प्रमुख है कला और साहित्य । संस्कार के प्रचार और प्रसार में कवि और साहित्यकारों का बड़ा योगदान है। भारतीय संस्कृति के गुण - गाथाओं को जन मानस तक पहुँचाने के लिए प्रयत्नशील रचनाकारों में सबसे आगे का नाम है श्री मैथिली शरण गुप्त जी।

उन्नीसवीं शती में यूरोपीय ज्ञान-विज्ञान और समाज दर्शन का प्रभाव भारत पर पड़ा। उसने यहाँ जिस वैचारिक आन्दोलनों को जन्म दिया उसे भारतीय पुनरुत्थान माना गया। उस पुनरुत्थान की चेतना शिक्षा और साहित्यिक क्षेत्र में राजाराम मोहन राय, केशव चंद्र, दयानंद और विवेकानंद आदि ने जो किया, वही साहित्य में टागौर और गुप्त जी ने किया।

पुनरुत्थान ने हमारी सारी संस्कृति, संपूर्ण इतिहास और समग्र विश्वास पर नया आलोक फैला, सबसे अधिक अभिव्यक्ति गुप्त जी के काव्यों में ही हुई है। इमलिए गुप्त जी को पुनरुत्थान के कवि माने जाते है। गुप्त जी महावीर प्रसाद द्विवेदी जी के समय के अग्रणी लेखक थे। वे परम वैष्णव भक्त थे। इसलिए उनका संबंध रामोपासक से था। इन भक्तों के संपर्क गुप्त जी के व्यक्तित्व और चित को बहुत प्रभावित किया और भारतीय आराध्य राम और श्रीकृष्ण उनके जीवन के आदर्श भी बन गये। गुप्त जी समन्वय के कवि थे। इसलिए उन्हें आधुनिक तुलसी भी कहा जाता है।

पच्चास साल के साहित्यिक जीवन में उन्होंने साठ से अधिक कृतियों का सृजन किया। राष्ट्र कवि मैथिली शरण गुप्त का बहुआयामी व्यक्तित्व है। भारतीय संस्कृति और उसकी गरिमा कवि को बनने में बडा योगदान दिया है। उनका मानना है कि "साहित्य मनोरंजन के लिए ही नहीं बल्कि उपदेशात्मक भी है। कवि का अपना कर्म होता है। जनकल्याण इसका नीव होता है" (राष्ट्रवाणी पृ16) वे भारतीय संस्कृति के पुजारी थे। उनकी संपूर्ण रचनाओं में संपूर्ण राष्ट्र की आत्मा दिखाई पड़ती है। जिस रचनाकार की रचनाओं में संपूर्ण देश की आत्मा दिखाई देती है उन्हें राष्ट्र कवि घोषित किया गया है। गुप्त जी हमारे पौराणिक ग्रंथों का (रामायण और महाभारत) विशद अध्ययन किया और उन पुनराख्यानों का आधुनीकरण भी किया। उनकी रचनाओं में अतीत के गौरव, वर्तमान की कमज़ोरियों और उज्ज्वल भविष्य की कामना की वृद्धि पाई जाती है।

गुप्त जी सन् 1909 में लिखना शुरू किया है। 1910 में उन्होंने 'जयद्रथ वध' लिखा है। इसमें उन्होंने धर्म और अधर्म के बीच की लड़ाई को, न्याय और अन्याय के बीच की लडाई को, सत्य और असत्य के बीच की लड़ाई को चित्रित कर धर्म नीति न्याय के पक्ष खड़ा होने का आह्वान दिया। उन्होंने अपने स्वर को वाल्मीकि और व्यास के स्वर से मिलाकर अपनी बात को स्पष्टता से व्यक्त किया है।

दुख शोक जब जो आ पडे/जो धैर्यपूर्वक सब सहो/ सफलता क्यों नहीं/कर्तव्य पथ पर दृढ़ रहो/अधिकार खोकर बैठ रहना/यह महा दुष्कर्म है/न्यायार्थ अपने बंधु को दंड देना धर्म है। (जयद्रथवध पृ. 1) धर्म और अधर्म के कारण पांडव और कौरवों के बीच युद्ध हुआ जो भव्य भारत वर्ष के कल्पांत का कारण भी बन गया।

भारत भारती (1912) गुप्तजी की लोकप्रिय

रचना है। इस रचना की सृजन की बाद उन्हें राष्ट्र कवि का सम्मान प्राप्त हुआ है। इसके तीन खण्ड है :- अतीत, वर्तमान और भविष्य। प्रथम खण्ड में भारत के प्राचीनतम संस्कार पर गर्व प्रकट करके हमारे अतीत की गाथा गाती है। वर्तमान में वर्तमान दुखद स्थिति पर विचार करने का और भविष्य खण्ड में उस उत्कर्ष को वापस लाने का उद्बोधन कवि करते हैं। अतीत खण्ड की पंक्तियाँ देखिए- भगवान! भारत वर्ष में गूँजै हमारी भारती/मानस भवन में आर्य जन जिसकी उतारे आरती (भारत-भारती - अतीत खण्ड)

कवि अपने को खुद पहचानने का उपदेश देते है और विचार करके समस्याओं का समाधान ढूँढ़ने का आह्वान भी करते हैं। संपूर्ण भारतीय संस्कृति कवि के मुँह से बोल रही हैं। गुप्त जी के सांस्कृतिक चिन्तन का स्रोत भारतीय दर्शन और शास्त्र है। रामायण और महाभारत उनके जीवन दर्शन के निर्माण में बडा योगदान दिये हैं। सत्यं वदा धर्मम् चरा, वसुधैव कुटुम्बकम्, असतोमा सदगमया आदि भारतीय जीवन दर्शन की झलक बडी मात्रा में कवि की रचनाओं में विद्यमान है। यही जीवन दृष्टि उनकी समस्त रचनाओं की आधारभूत शिला है।

भारतीय संस्कृति और इतिहास के जीवन्त चित्रण करना गुप्त जी का आदर्श है। पहली रचना से लेकर अंतिम रचना तक संपूर्ण भारत को देखने का मौका पाठकों को प्रदान करते है। इससे बिना भारत के गौरवमय इतिहास को एक जगह में बैठकर पढ़ने का सुअवसर भी प्रदान करते है। 'रंग में भग' में मारवाड के रजपूतों का वर्णन है। 'विष्णुप्रिया' में बंगाल के गुरुकुल में पंजाब का, द्वापर में ब्रज देश का, सिद्धराज में गुजरात का 'पंचवडी' में महाराष्ट्र का और 'जय भारत' में हरियाणा के सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक विरासत का चित्रण देखने को मिलते हैं।

गुप्त जी की जीवन दृष्टि को निम्न लिखित रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. धर्म संबंधी विचार 2. वर्णाश्रम संबंधी दृष्टिकोण 3. अवतार वाद के बारे में 4. उपेक्षित नारियों के प्रति संवेदना 5. सामाजिक और पारिवारिक जीवन संबंधी दृष्टिकोण 6. मानवतावादी दृष्टिकोण 7. लोकतांत्रिक 8. विश्व शांति।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि गुप्त जी का सांस्कृतिक दृष्टिकोण सर्वकालीन दृष्टिकोण है। भारतीय संस्कृति के जो उत्कर्ष बिन्दु है, जो उसके महत्वपूर्ण पक्ष है, जैसे यह संस्कृति समन्वय के भी संस्कृति है। भारतीय संस्कृति सहिष्णुता की संस्कृति है। सत्य, शील और आदर्श इसके प्राण तत्व हैं भारतीय संस्कृति दया, नीति, धर्म, परोपकार, उत्तम कर्म, कर्तव्य बोध और अहिंसा पर बनती संस्कृति है। गुप्त जी ने जीवन के इन अनुपम मूल्यों को सृजनात्मक शक्तिके माध्यम से उजागर करने का महत्वपूर्ण कार्य करके पुनरुत्थान की प्रक्रिया में अपने योगदान का श्रद्धापूर्वक निर्वहण भी किया है।

संदर्भ सूची

1. भारतीय साहित्य के निर्माता मैथिली शरण गुप्त - श्रीमती रेवति रमण
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास संपादक - प्रो. विश्वम्बर अरुण, लक्ष्मी नारायण प्रकाशन, आगरा
3. राष्ट्रवाणी - मैथिलीशरण गुप्त संपादक - श्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी साकेत प्रकाशन, चिरगाँव झाँसी
4. साकेत, जयद्रधवध और पंचवटी - मैथिली शरण गुप्त।

एसोसिएट प्रोफेसर
बी जे एम गवर्नमेंट कॉलेज चावरा,
कोल्लम

'कुइयाँजान' में चित्रित जल समस्या

डॉ.कला.टी.वी

पानी की समस्या को केन्द्र बनाकर लिखा गया उपन्यास है - 'कुइयाँजान' । कुइयाँ का अर्थ है जलस्रोत, जो आदिम युग से मनुष्य की प्यास बुझाता रहा है। आज पानी को लेकर केवल दो व्यक्तियों के बीच नहीं, दो राज्यों और दो देशों के बीच तनाव की स्थिति है। पानी की समस्या को दूर करने के लिए सरकार ने अनेक योजनायें की हैं लेकिन नासिराजी यह व्यक्त करती है कि सरकार द्वारा बनायी गई विभिन्न योजनाओं को सफल करने के लिए पहले जन जागृति की जरूरत है। जल समस्या को केन्द्र में रखकर बहुत ही सजीव और भावात्मक रूप से इस उपन्यास का कथानक प्रस्तुत किया गया है। पानी के द्वारा 'इंसानी रिश्ते की प्यास' और इंसानी रिश्ते के जरिए 'पानी की प्यास को लेखिका श्रीमती नासिरा शर्मा ने इस उपन्यास में सूचित किया है।

इलाहाबाद की बताशेवाली गली के पास मस्जिद वाली गली में रहनेवाले मस्जिद के मौलाना की मृत्यु से उपन्यास का प्रारम्भ होता है। मौलवी के रहन-सहन के लिए जल न मिलता है। उसके साथ बदलू नामक एक लड़का रहता है। इस दुनिया में बदलू का एकमात्र आश्रय मौलवी था। उनकी मौत से वह घबरा उठता है। अपनी आश्रयदाता के अन्तिम स्नान के लिए और उसकी अंतरात्मा की खुशी के लिए बदलू घर-घर में जाता है। अंत में उसका दर्द समझकर एक औरत उसको आवश्यकतानुसार पानी ले जाने की अनुमति दे देती है। मौलवी की मृत्यु के बाद बदलू की स्थिति बहुत शोचनीय थी। "मौलवी साहब की मौत के बाद बदलू की समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करें, कहाँ जाए? आदत के अनुसार वह सुबह उठकर झाडू दे, हौज में पानी भर देता था। फिर कुरान पढ़, वह चौखट पर सारे दिन बैठा, गली में आने-जाने वालों को ताकता रहता था। पेट में भूख से चूहे कूदते तो वह पुराने होटल की तरफ बढ़ता, जिसका मालिक उसे नजर अंदास कर देता था। एक दिन भूख से बिलबिलाकर खाना मांगा तो उसने सोरबे का करछुल पतीले पर मारकर कहा दाम कहाँ से देबो।"[1] अंत में बेसहारे बदलू को उस घरवालों ने आश्रय दिया जिन्होंने उसको पानी देकर सहायता की थी। उस घर के लोग पानी के महत्व को जाननेवाले थे। इन घरवालों ने अपने लिए एक बड़ा हौज बनाया है। बरसात के दिनों में वे इस हौज में पानी भरकर साल भर जरूरत के अनुसार उसे खर्च करते हैं। वास्तव में आज की पानी की समस्या का एक प्रमुख कारण तो पानी की बर्बादी है। 'कुइयाँजान' में पानी की किसी एक समस्या या विकृति मात्र का वर्णन नहीं है। उपन्यास में पानी को एक ऐसे वटवृक्ष के रूप में चित्रित किया गया है कि जिससे जुड़े रहे मानव जीवन की हर स्थिति पल्लवित होती है। पानी के दूषित होने के कारण या समाधान, विषैला पानी से उत्पन्न हो रही बीमारियों की चर्चा, पानी का व्यवसायीकरण, निजीकरण, नदियों के बँटवारे, डॉक्टरों की अपनी मानवीय जिम्मेदारियों, गरीब और अभावग्रस्त मजदूर वर्ग की समस्याओं और विडम्बनाओं इन सभी पहलुवों पर प्रकाश डालने का प्रयास उपन्यास में सब कहीं विद्यमान है। पानी की समस्याओं का समाधान भी उपन्यास में देखने को मिलता है।

इस उपन्यास का नायक कमाल एक डॉक्टर है। एक डॉक्टर के रूप में वह पूरे समय गरीबों की सेवा में लगा रहता है। वह एक अच्छे डॉक्टर के साथ-साथ एक अच्छा समाजसेवी, पति, पिता और बेटा भी है। जल की समस्या के निदान हेतु होनेवाली सेमिनारों और सम्मेलनों में अपनी सहभागिता द्वारा जन-कल्याण का कार्य भी वह करता है। लोगों की सेवा करने के लिए वह हर समय तैयार है। कमाल एक धनी परिवार का है लेकिन उसका मन हर वक्त पीडित एवं अशरण व्यक्तियों के साथ है। उसकी पत्नी

समीना अपने पति के सामाजिक दायित्वों का निर्वाह निर्बाध गति से चलने के लिए और परिवार को ठीक से चलाने के लिए बहुत मेहनत करती है। इसके लिए वह स्कूल में अध्यापिका का काम करती है लेकिन दौर्भाग्यवश समीना की मृत्यु से कमाल असहाय महसूस करता है तथा टूटकर बिखर जाता है। नदी के घाट पर बैठकर बहते रहे जल को निहारते हुए वह जीवन की गतिशीलता और उसके प्रति अपने कर्तव्यों पर विचार करता है। वह अपने को संभालकर फिर भी जनकल्याण में भाग लेता है। सेमिनारों के नाम पर डॉ. कमाल देश के हर प्रांत में धूम-घूमकर जल समस्या का कारण ढूँढ़ता है। जब वह इसके लिए राजस्थान गया तो वहाँ पानी की कमी के कारण पीडित लोगों की समस्याएँ सुनकर उसका दिल बहुत द्रवित होता है। यहाँ बहुत दुखी होकर वह कह उठता है- "आज़ादी मिले एक अर्सा हो गया, परंतु स्वच्छ जल सब को बराबर नहीं मिला। उल्टा जिस गुलामी को हमने कभी नकारा था अब जल परियोजनाओं के चलते हम फिर उस दासता को स्वीकार कर रहे हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ किस तरह अपना उल्लू सीधा कर रही हैं, जब यह षड्यंत्र हमारी समझ में आ रहा है, तो उनकी समझ में क्यों नहीं आ रहा जो ऐसे अनुभवों पर हस्ताक्षर करते हैं।"[2]

कुईयाँजान में लेखिका हमको यह सन्देश देती है कि "हम अपनी नदियों को निर्मल बनाने और जल के महत्व को समझने व समझाने की दिशा में जागरूकता लाने की कोशिश करें, ताकि हम अपने जल को पीने के काबिल बना सकें। वरना विदेशी हमारे ही पानी को लेकर हमें गुलाम बनाने की रणनीति में सफल होंगे। क्या नदियों को जोड़ने से सबको पीने का पानी मिलेगा? छतीसगढ में शिवनाथ नदी का निजीकरण हुआ तो और वहाँ के ठेकेदारों ने वहाँ के लोगों को पानी लेने पर रोक लगा दी है। ऐसी स्थिति में विदेशी ऋण लेकर हम अपने को कहाँ ले जा रहे हैं?"[3] पानी की रक्षा के लिए उसका दुरुपयोग समझना व रोकना जरूरी है।

'कुईयाँजान' उपन्यास में नासिराजी यह व्यक्त करती है कि "हमारा देश धार्मिक निष्ठा रखनेवालों का देश है, तो भी गंगा का यह हाल है। कहते हैं पाँच हजार साल बाद गंगा विलुप्त हो जाएगी इसके लक्षण झलक रहे हैं। अब गंगा के अंदर पानी कम, बालू ज्यादा है। जहाँ गंगा में प्रवाह है, वहाँ भी सिल्ट और मिट्टी जमा हो गई है। यह घोर चिंता का विषय है। प्रकृति ने जो हमें दिए हैं उन स्रोतों को हम सहेजें न कि नई तकनीक का ओछा प्रयोग करने की ललक में कान को गाल पर लगा दें और आँख को सर के पीछे और कहें कि यह हमारी मेडिकल उपलब्धियाँ हैं बात इंसान की मुक्ति की है उसे पूज्य बनाने की नहीं। इसलिए इस धरती की देख-रेख हम उचित तरीके से करें, न कि उसे अपनी इच्छाओं की प्रयोगशाला बना उसका सत्यनाश कर डालें।"[4] इस सन्देश में भारत की समसामयिक माँग गूँज उठती है।

नासिरा जी ने भविष्य में आनेवाले जल संकट को दृष्टि में डालकर ही यह उपन्यास लिखा है। किन्तु जल समस्या ने भविष्य में नहीं आज के जमाने में ही अपना बीभत्स रूप धारण कर लिया है। पानी को लेकर प्रकृति और इंसान के रिश्तों के पूरे इतिहास में जाते हुए नासिरा जी उन कारणों की तलाश भी करती है जो अच्छे साफ पानी को लगातार हमसे दूर किया जा रहे हैं। वह उन उपायों की तलाश की भी कोशिश में है कि जो नुकसान हो चुका है, उसकी भरपाई अब कैसे की जा सकती। इस ओर सरकारी कोशिशों की जो दिशा है वे उससे असहमति भी प्रकट करती हैं।

'कुईयाजान' मानवीय अस्तित्व एवं पर्यावरण की समस्याओं को लेकर लिखा गया उपन्यास है। आज जल से लेकर समाज में जो जो समस्यायें चल रही हैं प्रस्तुत उपन्यास इसका सफल दृष्टान्त है। आज देश में फैली एक बड़ी समस्या है पानी की कमी। पानी के अभाव में केवल मानव जीवन ही नहीं पशु पक्षियों भी तड़पते रहते हैं। इसका यथार्थ चित्रण नासिराजी ने किया है - "साबुन के फेन से भरा पानी जैसे ही गुसलखाने से निकल अंगन की सूखी नाली में बड़ा वैसे ही चिड़ियों का गोल छज्जे, दीवार,

मुंडेरे से उड़ नीचे आया। अंदर पानी गिरने की छपाछप आवाज़ आ रही थी और बाहर बहते पानी में चोंच डाले चिडियों पंख फड़फडा-फडफडाकर नहा रही थी। इस बीच पेड़ से उतर तीनों गिलहरियाँ भी आ गई थी।"[5] प्रकृति के साथ जीव-जंतुओं को भी यहाँ जोड़ा गया है।

आज की जल समस्या का प्रमुख कारण पर्यावरण प्रदूषण है। मानव ने अपनी सुख-सुविधा के लिए प्रकृति की स्वाभाविकता को नष्ट किया। विदेशी अनुकरण, आधुनिक जीवन शैली और बाज़ारवाद तथा बहुराष्ट्रीय कंपनियों के ताकती हाथों ने प्रकृति से छेड़छाड़ की, बाँध बनाए, जिससे परम्परागत जलस्रोतों की उपेक्षा हुई। फलस्वरूप वातावरण में असंतुलन आ गया। बाढ़, सूखा आदि इसीकी देन है। जलसमस्या पर काम करनेवाले कमाल जैसे लोग तो प्रकृति पर होनेवाले अत्याचारों से दुखी हैं। उनके अनुसार देश में सूखा होने का मुख्य कारण तो वनों का नाश है। आज पर्यावरण को इतनी क्षति पहुँचाई गयी है कि हरी-भरी इलाके भी सूख गये। आज प्रकृति और पर्यावरण पर मानवीय हस्तक्षेप अधिक बढ़ा है, जिससे पर्यावरण का चेहरा बदल कर बीभत्स हो गया है। इस हिंसक समय का प्रभाव मनुष्य पर मात्र नहीं प्रकृति पर भी पड़ा है। आज हमारे असीम जलाशयों पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने अपना अधिकार जमा लिया है। नदियों, तलाबों, कुओं से भरा हमारा देश आज बूंद खालिस पानी के लिए तरसता है।

आज हमारे अधिकतर जलसंचयों का पानी पीने के लिए योग्य नहीं है। लोग कूड़ा-कचरा डालकर उसे प्रदूषित करते हैं। गन्दा पानी के कारण आज देश कई तरह की बीमारियों का शिकार बन जाता है। नासिरा जी का बृहत उपन्यास 'कुईयाजान' स्वांत सुखाय के लिए लिखा गया सपनीली या डरावनी कोरी परिकल्पना नहीं है। इसकी सार्थकता साकारात्मक मानवीय उद्देश्य एवं सामाजिक संदर्भ में ही अन्तर्निहित होती है।

'कुईयाँजान' में नासिरा शर्मा ने यह व्यक्तकिया है कि 'आज विश्व में आंकडों द्वारा ज्ञात होता है कि लगभग एक अरब से ज्यादा लोग अनेक तरह के रोगों के शिकार हो रहे हैं। वे मृत्यु की ओर दिन-प्रतिदिन बढ़ते चले जा रहे हैं। भारत में गाँव, कस्बों व शहरों में लोग कुएं, तालाबों और नदियों से पानी लेते हैं जो अधिकतर गंदा और कीटाणु-युक्त होता है। उसमें प्राकृतिक रूप से पाए जानेवाले संखियों की मिलावट होती है। सारे विश्व में 261 प्रमुख नदियों एक से अधिक देशों से होकर गुजरती हैं। दुनिया के कुल नदी - जल प्रवाह का 80 प्रतिशत इन्हीं में है और जिन देशों से होकर ये गुज़रती हैं उनमें संसार की 40 प्रतिशत जनसंख्या रहती है। पानी के कारण सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक तनाव पनपते हैं जैसे भारत और पाकिस्तान, भारत और बंग्लादेश, भारत और नेपाल, सीरिया और तुर्की के बीच और स्वयं भारत में कर्नाटक और तमिलनाडु के बीच कावेरी नदी को लेकर तनाव की स्थिति पनप चुकी है। 6 आज केरल और तमिलनाडु के बीच भी जल से लेकर समस्याएँ चल रही हैं। सन् 2005 ई. में प्रकाशित 'कुईयाँजान', लेखिका ने भविष्य में आनेवाले जल संकट पर नजर डालकर ही लिखा है लेकिन अब यह संकट भविष्य में नहीं वर्तमान में ही तीष्णता से चल रहा है। यह उपन्यास केवल मनुष्य की नहीं समस्त जीवजन्तुओं एवं प्रकृति के अस्तित्व को बचाने के लिए चिंतित दिखाई पड़ता है।

संदर्भ

1 नासिरा शर्मा - कुइयाँजान -पृ 15
2 नासिरा शर्मा -कुइयाँजान -पृ 19
3 नासिरा शर्मा - कुइयाँजान -पृ 403
4 नासिरा शर्मा - कुइयाँजान -पृ 404
5 नासिरा शर्मा - कुइयाँजान -पृ 221
6 नासिरा शर्मा - कुइयाँजान पृ 345

असिस्टेंट प्रोफेसर
डिपार्टमेंट ऑफ़ हिंदी
एन एस एस हिन्दू कॉलेज
चंगानाचेरी, केरला

आदिवासी साहित्य

डॉ.सिमी.टी

आदिवासी साहित्य को समझना है तो पहले हमें आदिवासी को समझना होगा और यह भी समझना होगा कि यह समाज तथाकथित मुख्यधारा से क्यों और कैसे अलग है तथा आधुनिक समाज से अलग क्या-क्या विशेषताएँ रखता है? विश्व में कुल 37 करोड़ आदिवासी हैं जो करीब 70 देशों में रह रहे हैं। आदिवासी साहित्य को लेकर विद्वानों मे अलग अलग मत है जिसमे तीन मत प्रमुख हैं-

1, आदिवासियों द्वारा लिखा गया साहित्य आदिवासी साहित्य है।

2, आदिवासी विषय पर लिखा गया साहित्य आदिवासी साहित्य है ।

3 आदिवासियत यानी आदिवासी दर्शन के तत्त्वों को शामिल करके लिखा गया साहित्य आदिवासी साहित्य है।

आदिवासी जीवन पर लिखा गया प्रथम उपन्यास 'बसंत मालती' (1899) है। जिसके लेखक जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी है। इसमें बिहार के मुंगेर जिले के मलयपुर अँचल के मल्लाहों के जीवन को केंद्र में रखा गया है। इसके बाद ब्रजनंदन सहाय ने विंध्याचल के पहाड़ी आदिवासी को लेकर 'अरण्यमाला' (1904) उपन्यास लिखा। इसी प्रकार मन्नन द्विवेदी ने आदिवासी जीवन प्रवेश को लेकर रामलाल' (1904) उपन्यास लिखा । इसी प्रकार 'रामचीज सिंह' कृत 'बन में संथाल परगना के आदिवासियों को केंद्र में रखा है तथा उनके -संघर्ष, संस्कृति, सभ्यता तथा समस्याओं को प्रमुखता से उकेरा गया है। ये सब आरम्भिक उपन्यास हैं, जिसमें आदिवासियों का बहुत कम वर्णन हुआ है । आदिवासी लेखकों द्वारा सुबह की शाम' (1974), 'छैला छंदू' (2004), 'धूणी तपे तीर' (2008), 'लौटते (2014) आदि उपन्यास हिन्दी में लिखा गया है।

हिन्दी जगत ने पहले पहल आदिवासी समाज से रूबरू शब्द रेणु के उपन्यास मैला आँचल में देखा। यहीं उसका परिचय आदिवासियों की जिजीविषा से भी हुआ और उसने देखा कि प्रशासन की बेरुखी और जुल्म का शिकार होने के बावजूद माँदर एवं डिग्गे की आवाज बंद नहीं हो पाई। लेकिन, एक सच्चे हमदर्द की तरह पीड़ित संथालों के प्रति सहानुभूति के बावजूद यह संघर्ष तार्किक परिणति तक नहीं पहुँच पाता, फलतः उनके जीवन में बदलावों को ला पाने में असमर्थ रहता है।

मधु कांकरिया ने 'खुले गगन के लाल सितारे' उपन्यास में नक्सलवाद उभारा है। ये उपन्यास नक्सली भावना से ओतप्रोत, नक्सली उन्मूलन, नक्सलवादी क्रेज और युवाओं में नक्सलवादी बनने की भावनाओं को बयां करता है। नक्सलबाड़ में हो रहे शोषण का वर्णन बड़े रोचक ढंग से किया गया है।

संजीव बख्शी का 'भूलन कांदा' उपन्यास छत्तीसगढ़ के ग्रामीण आदिवासियों की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। इसका पात्र भकला, जिससे गलती से बिज्जू की हत्या हो जाता है। भकला के परिवार में उसकी पत्नी प्रेमिन और उसके दो बच्चे हैं । भकला का विवाह सभी गाँव वालों ने मिलकर कराया था। गलती से हुए अपराध के लिए गाँव का मुखिया गंजा नामक व्यक्ति जिसका इस दुनिया में कोई नहीं है जो भकला की जगह जेल जाने को तैयार हो जाता है।

मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास 'अल्मा कबूतरी' मध्यप्रदेश के बुन्देलखण्ड के जंगलों में बसने वाली कबूतरा आदिवासियों की उपेक्षित, तिरस्कृत, अपमानित और प्रताडति महिला की स्थिति का चित्रण किया गया है। नट, मदारी, कंजर, सौसी, सपेरे पारदी हाबूड़े, बनजारे, बावरिया, कबूतरे आदि आदिवासियों की तरह जीवन यापन करने वाली कबूतरा आदिवासियों के जीवन के विविध पहलू, अंधविश्वास, समस्याओं, विवाह, मृत्यु की परम्पराओं, जीवन संघर्ष और विडम्बनाओं का चित्रण किया गया है। इसमें तीन प्रमुख महिलाओं, कदमबाई, भूरी बाई और अल्मा के माध्यम से इस जाति की स्त्रियों के संघर्षमय तिरस्कृत

और शोषित जीवन का वर्णन किया गया है। कदमबाई के पति का अपराध में लिप्त होने की वजह से इसे पति की अनुपस्थिति में अनेक परेशानियों का सामना करना पड़ता है। आजाद भारत में कबूतराओं की लड़ाई आज भी जारी है। कबूतराओं से संबंध रखने वाले कज्जा (उच्च लोग) लोगों को भी बहिष्कृत कर दिया जाता है।

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'झूलानट' में एक अनपढ़ नारी शीलों की स्त्री-शक्ति की अदम्य कहानी है। शीलों जब विवाह कर अपने पति के घर आती है, तो उसे पति का प्रेम नहीं मिलता और वह उसे छोड़कर चला जाता है। फिर भी शीलों अपनी पति के प्रेम के लिए न जाने कितने व्रत-उपवास, टोने-टोटके करती है और अपने पारिवारिक कर्तव्यों को निभाती है।

राकेश कुमार सिंह रचित उपन्यास 'जो इतिहास में नहीं है' का कथानक 'हूल' आंदोलन से संबंधित है। इसका नायक संताल युवा हारिल मुरमू है। जो समाज में एक नई चेतना लाना चाहता है। हारिल मुरमू एक ऐसा युवक हैं जो अंग्रेजों के शोषण का शिकार होता है, जिसके चलते वह अपनी जमीन तक गँवा देता है। अपने गाँव से चले जाने के बाद सरकार उसको मृत मान लेती है और उसकी जमीन को हथिया लेती है ।

एम. वीरप्पा मोयिलि ने अपने उपन्यास 'कोट्टा' में कर्नाटक की एक दलित आदिवासी कोरग के रहन-सहन, उनकी संस्कृति और परम्पराओं के साथ-साथ उनके शोषित और अभावग्रस्त जीवन का मार्मिक चित्रण किया है। इसमें कोरगों के शक्ति सामर्थ्य, उनकी भावनात्मक सरलता और लोकसम्पदा का हृदयग्राही चित्रण करने के साथ-साथ सत्ता लोलुप एवं कुटिल नेताओं तथा स्थानीय अधिकारियों द्वारा किये जा रहे उनके शारीरिक एवं आर्थिक शोषण को भी उजागर किया है।

राकेश कुमार सिंह ने 'पठार पर कोहरा' उपन्यास में झारखण्ड के आदिवासियो' के शोषण, उत्पीड़न और अत्याचारों में फँसे लोगों का चित्रण किया है। इसमें भारत की शिक्षा व्यवस्था पर करारा व्यंग्य किया गया है। यह संघर्षशील आदिवासी महिला रंगेनी की कहानी है। इसमें रंगेनी एक ऐसी आदिवासी महिला के रूप में उभरकर सामने आई है। जो अनेक पुरुषों द्वारा बलात्कार किये जाने पर भी अपने जीवन की सार्थकता को बनाए हुए है। इसी दौरान उसके पेट में पल रहे अंश पर भी आदिवासी समाज सवाल उठाए गए की आखिर ये बच्चा सोनारा है किसका, परंतु रंगेनी के पास इसका कोई जवाब नहीं होता है। जो कुछ रंगेनी के साथ बीता था, वह किसी औरत के लिए बेहयाई की बात थी।

डॉ. गंगासहाय मीणा के अनुसार "आदिवासी साहित्य अपनी रचनात्मक उर्जा आदिवासी विद्रोह की परंपरा से लेता है। 1991 के बाद आर्थिक उदारीकरण की नीतियाँ तेज़ हुईं । आदिवासी शोषण की प्रक्रिया के प्रतिरोध स्वरूप आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा के लिए राष्ट्रीय स्तर पर पैदा हुई रचनात्मक उर्जा आदिवासी साहित्य है। इसमें सैंकड़ों भाषाएँ बोलने वाले देश भर के रचनाकार बढ़-चढ़ कर हिस्सा ले रहे हैं। इसका भूगोल, समाज, भाषा, संदर्भ से शेष साहित्य से उसी तरह पृथक है जैसे स्वयं आदिवासी समाज। यह आदिवासी साहित्य की अवधारणा के निर्माण का दौर है। आदिवासी साहित्य अस्मिता की खोज, शोषण के विभिन्न रूपों के उद्घाटन तथा आदिवासी संकटों और उसके खिलाफ हो रहे प्रतिरोध का साहित्य है।"

वंदना टेटे अपनी पुस्तक 'आदिवासी साहित्यः परंपरा और प्रयोजन' में आदिवासी साहित्य संबंधी प्रचलित तीन धारणाओं उसके लोक साहित्य - होने, अनगढ़ होने और प्रतिरोध का साहित्य होने का खंडन करती हैं तथा आदिवासी संस्कृति, जीवन- दर्शन व उनके विश्व दृष्टिकोण के प्रति एक नई आत्मीय दृष्टि की माँग करती हैं। आदिवासी - लेखन हिंदी के अस्मितावादी विमर्शों में सबसे नवीन है। वर्षो से हाशिए पर रखे गये आदिवासी समुदाय को आज साहित्य में जगह मिल रही है और इससे भी अच्छी बात यह है कि इस दिशा में खुद इस समुदाय के लोगों के द्वारा ही पहल की जा रही है। इस दृष्टि से समकालीन कवि अपनी कविताओं में उनके जीवन, उनकी स्थितियों, उनके संघर्षों, उनकी आकांक्षाओं और उनके सपनों को कविता में अभिव्यक्त कर रहे हैं। महत्वपूर्ण यह है

कि आरंभिक और ज्यादातर आदिवासी साहित्य वाचिक परम्परा का हिस्सा रहा है और इसीलिए यह कविता के माध्यम से हमारे सामने आता है। यही कारण है कि आदिवासी साहित्य की विधाओं में कविता' सर्वाधिक महत्वपूर्ण विधा रही है। इनमें उनके भोगे हुए सत्य के साथ साथ आदिवासी समाज के सामाजिक वैयक्तिक्र जीवन संघर्ष को अभिव्यक्ति मिली है। इनमें विभिन्न सामाजिक विद्रोह, नारी के जीवन-संघर्ष, विस्थापन, अशिक्षा, अभाव एवं गरीबी और अस्तित्व के प्रश्न को प्रमुखता मिली है।आदिवासी कविताओं में उनका अतीत का संघर्ष, पुरखों का लोक साहित्य तथा उनके दर्द व पीड़ाओं को उकेरा गया हैं। आदिवासी कविता समाज में सृजनात्मक का कार्य करती हैं, वह प्रकृति के विभिन्न अंग जैसे पेड़, नदिया, पहाड़, झरने व खेत-खलिहान की बात करती हैं।

आज के दौर में अधिकतर आदिवासी कवि अपने समाज के यथार्थ को चित्रित कर रहे हैं, जिसमें उनका शोषण, अन्यथा, विस्थापन की पीड़ा, पलायन, अशिक्षा, बेरोजगारी, स्त्री अस्मिता व अस्तित्व इत्यादि प्रमुख समस्याएँ हैं। कल तक जो इस जल, जंगल और जमीन का मालिक था, आज वह उसी से वंचित है, अतः वह दर-दर की ठोकरें खा रहा है, उनकी औरतों के साथ दैहिक शोषण किया जाता हैं ।

आदिवासी स्त्रियाँ अपनी अस्मिता को बचाने के लिए जूझ रही हैं, सीता-मौसी उपन्यास की नायिकाएँ सीता और मौसी भी इनमें से एक है। सीता एक आदिवासी महिला है, जो कोयला खदानों में कोयला ढोने का काम करती है। आदिवासी समाज में महिलाओं को अपना जीवन साथी चुनने व छोड़ने की आजादी होती है। सीता के पति की मृत्यु के बाद सीता यूनियन के मुंशी यासीन मियाँ जो कि एक मुसलमान था, आदिवासी रीति-रिवाज से विवाह कर लेती है। यासीन सीता से बहुत प्रेम करता था लेकिन धीरे-धीरे उसका प्रेम समाप्त हो गया और वह उसकी ही जाति की एक लड़की से विवाह कर लेता है। सच तो यह था कि पुरुष-दम्भ ही सीता की त्रासदी का कारण था ।पर इस सत्य को स्वीकारने की बजाय, सब दूसरे कारण ही ढूँढने में लगे ।

आदिवासी कवियों में महादेव टोप्पो, निर्मला पुतुल, हरिराम मीणा, वाहरू सोनवणे, केशव मेश्राम, महादेव टोप्पो, अनुज लुगुन,रामदयाल मुंडा, सरिता बड़ाइक, डॉ. मंजु ज्योत्स्ना, दीनानाथ मनोहर आदि ने आदिवासी जीवन के विभिन्न पहलुओं, सामाजिक विद्रोह,नारी का जीवन संघर्ष, सामाजिक संघर्ष, आदिवासी न्याय व्यवस्था,विस्थापन, अस्तित्व की समस्या और अशिक्षा, व्यवस्था के शोषण-दमन को शब्दबद्ध किया है।

आदिवासी साहित्य मूलतः सृजनात्मकता का साहित्य है। यह इंसान के उस दर्शन को अभिव्यक्त करने वाला साहित्य है जो मानता है कि प्रकृति और सृष्टि में जो कुछ भी है, जड़-चेतना, सभी कुछ सुंदर है। वह दुनिया को बचाने के लिए सृजन कर रहा है। उसकी चिंताओं में पूरी सृष्टि, समष्टि और प्रकृति है।

1. सं. रमणिका गुप्ता, आदिवासी साहित्य यात्रा, संस्करण 2016, पृ.सं. 24

2. सं. डॉ. उषाकीर्ति, डॉ. सतीश पाण्डेय, डॉ. शीतलाप्रसाद दुबे : आदिवासी केन्द्रित हिंदी साहित्य, प्रथम संस्करण 2012, पृ.सं. 30

3. सं. वंदना टेटे : आदिवासी दर्शन और साहित्य, संस्करण 2016, पृ.सं. 24

4 : गंगा सहाय मीणा : आदिवासी और हिन्दी उपन्यास। अनन्य प्रकाशन - दिल्ली

5: जनार्दन : आदिवासी साहित्य समाज रविकार गैंड / और संस्कृति, अनंग राकेश कुमार सिंह प्रकाशनः दिल्ली

6: जानकी प्रसाद शर्मा : शानी : आदमी और अदीब नेशनल पब्लिशिंग हाउस

7: शकेश वत्स : जंगल के आसपास, राजपाल कण्ड सन्ज, नयी दिल्ली

सेंट मेरीस कॉलेज, मणरक्काड
कोट्टयम

तीसरी ताली उपन्यास में किन्नर विमर्श

डॉ. सुनील एम पाटिल

समकालीन हिंदी साहित्य में बहुत सारे विमर्श उभर आए है। इन साहित्य विमर्श में मुख्य है ‘ किन्नर विमर्श।

किन्नरों के सामने दो समाज हैं - एक खुद का समाज अर्थात किन्नरों का समाज जहाँ नारी - पुरुष है और इस मुख्य धारा समाज में किन्नरों को शामिल नही किया जाता हैं। आज भी किन्नरों का इस्तेमाल लगातार जारी हैं, लेकिन उनके हित की बात न तब की गई और न अब। समाज में रहते हुए भी उन लोगों कई यातनाएँ, पीडाएँ, अपमान सब सहने पडते हैं।

भारत में किन्नर समुदाय पिछडा हुआ है। समाज द्वारा इसके विकास के रस्ते में अनेक बाधाएँ खडी की गई हैं। इसी कारण यह वर्ग विकास के पथ पर आगे नहीं बढ पाया और दबा कुचला वर्ग बन के रह गया। उन्हें अपने घरों में भी सुरक्षा का एहसास नही होता। यहाँ तक की उसके अपने माता - पिता भी उसे दूसरों के सामने स्वीकार करने से मना कर देते हैं। इन लोगों को समाज में समानता मिलने का अधिकार दिलाने में साहित्य की भूमिका महत्वपूर्ण रही हैं।

किन्नर के विषय पर कई उपन्यास आने लगे हैं। भारत में ही नही बल्कि विदेशों में भी कई ख्याति प्राप्त किन्नर लोग है, और उनके जीवन को आधार बनाकर उपन्यास रचा भी है। साहित्य जगत में किन्नरों के विषय पर चर्चा बढते जाने पर ही समाज को किन्नरों की सच्ची जीवन - कहानियों के बारे में पता लगने लगा है।

हिंदी उपन्यास जगत में नीरजा माधव, महेंद्र, भीष्म, चित्रा मुदगल, अनसूया त्यागी तथा प्रदीप सौरभ आदि के उपन्यास साहित्य में किन्नरों के विषय को स्थान मिला है। इन दोनों समाजों को एक साथ चित्रित करने का सफल प्रयास प्रदीप सौरभ जी ने ‘ तीसरी ताली ‘ उपन्यास में किया है।

‘ तीसरी ताली ‘ उपन्यास में किन्नर समाज और उसके सामाजिक जीवन का विस्तृत एवं विशाल चित्रण हुआ है । एक साथ रहते है। सभी दृष्टी से एक साथ रहने से समाज बनता है। किन्नर जब मुख्यधारा से विस्थापित होकर ही किन्नर अपने समाज का निर्माण करते हैं। किन्नर विभिन्न मंडली या घरानों में बाटकर जीते हैं। हर मंडली का एक मुखिया होता है, जिसे आमतौर पर नायक या सरगाना कहा जाता है।

इस उपन्यास में चित्रित मुख्य मंडली का सरगाना, ‘ डिम्पल ‘ नामक पात्र है। प्रत्येक मंडली का एक गुरु होता है। इनके गुरु आशामाई है जिनका आश्रम या पीठ मेहरोली की पहाडियों के बीच स्थित है। किन्नर अपने सारे कार्य - कलाप गुरु के उपदेशों के अनुसार करते है। किन्नरों की शादी भी होती है। जिनसें वे शादी करते हैं या अपने पति मानते हैं, उन्हें ‘गिरिया” कहते हैं। ये उनके नाम का करवा चौध भी रखते है। आम तौर पर ये मंडली में बाजा बजाने का काम करते हैं। यहाँ गोपाल नामक पात्र का चित्रण पहले ‘गिरिया’ के रुप में हुआ है।

किन्नर समाज में चार वर्गो के हिजडे हैं - निलिमा, हंसा, बुचरा तथा मनसा आदि। इन नामों का उल्लेख कहीं भी नही है। लेकिन हरेक पात्र का विश्लेषण इन चार वर्गो के निर्धारित लक्षणों के आधार पर किया जा सकता है। इनमें वास्तविक हिजडा ‘ बुचरा ‘ ही होते है। क्योंकि ये जन्मजात रूप से न पुरुष न नारी हैं। इस उपन्यास में गौतम साहब का बेटा विनीत बुचरा है। उनके जन्म से संबंधित जो विवरण उपन्यास में मिलता है, उससे यह पता चलता है। उपन्यासकार लिखते हैं कि - “सब ने एक ही जबाब दिया, बच्चे में स्त्री और पुरुष दोनों के लक्षण हैं। माँ के पेट में ग्यारहवें सप्ताह सेक्सल आर्गन को विकसित करनेवाले होरमेन अपनी भूमिका पूरी नही कर पाये।”[1] बुचरा की मानसिकता को

स्वाभाविक ढंग से प्रस्तुत करने में उपन्यास सफल हुआ है।

इस उपन्यास का दूसरा पात्र निलिमा है। निलिमा किसी कारणवश स्वयं को हिजडा बनने के लिए समर्पित कर देता है। ज्योति निलिमा हिजडा है। बाबू श्यामसुंदर सिंह के साथ लौन्डे-बाजी करनेवाली ज्योति को इस कारण से छोड देते है कि किसीने इसके साथ छेड खानी की है । यह ज्योति को समाज से ही फेंक देती है। भूख और आर्थिक विषमता ज्योति को हिजडा सोनम के पास ले पहुँचाती है । सोनम उससे लौन्डेबाजी की और धंधा छोड देने की सलाह देती है। ज्योति सोनम से अपने आपको हिजडा बना देने की बिनती करती है । ज्योति कहती है कि - " बिना हिजडा के भी मैं हिजडा बना हुआ हूँ । जो अपने को मर्द कहते है, वे कौन से हिजडों से कम है, गरीब का बेटा हूँ तो पूरे गांव की भौजाई बन गया हूँ।"[2]

यहाँ ज्योति हिजडा न होने पर भी उनका परिवेश उन्हें हिजडा बना देता है । ज्योति का कथन है कि - "माना मैं मर्द हूँ, लेकिन ये समाज मुझ से मर्द का नाम लेने के लिए राजी नही है। मुझे इस समाज ने मादा की तरह भोग की वस्तु की चीज में तबदील कर दिया है। मैं मर्द हूँ, औरत रहा हूँ या फिर हिजडा बन जाउ, इससे किसी को कोई फर्क नही पडेगा। पेट की आग तो बडे - बडे को न जाने क्या - क्या बना देती है।"[3] यहाँ ज्योति सामाजिक कारणों से किन्नर बनने को मजबूर हुआ है। कोई भी किन्नर समाज की ओर पलायन करता है। क्योंकि की इसके लिए आर्थिक विषमता मुख्य कारण है। मनसा नामक एक और वर्ग का चित्रण भी इसमें है जो शारीरिक रुप से पुरुष या स्त्री है। लेकिन मानसिक रूप से अपने को विपरीत लिंग अथवा अक्सर स्त्री लिंग के अधिक निकट महसूस करता है।

इस उपन्यास में मंजू इस प्रकार का पात्र है जिसका पता उपन्यास के वाक्यों से चलता है - " दरअसल मंजू बचपन से हिजडों के साथ रहते रहते अपने को हिजडा समझने लगी थी । शायद जीवन भर मंजू एक मुकम्मल औरत होने पर भी हिजडों की तरह व्यवहार करती है।"[4] यहाँ मंजू स्वयं यह जानती भी है कि वह एक मुकम्मल औरत है । लेकिन किन्नर बिरादरी के होने के नाते इतनी सारी कठिनाइयाँ झेलने पर भी किन्नर समाज से मुक्तहोने की चिंता उनके मन में कभी भी नही होती । अर्थात मंजू अपने आप उस माहौल से तादात्म्य प्राप्त करती है।

किन्नर समाज की एक पूजा - आराधना की व्यवस्था है । इसी प्रकार इन्हें भी अनुष्ठान की एक व्यवस्था है । समाज के प्रत्येक मंडल किसी न किसी देवता को अपनी इष्ट देवता को अपनी इष्ट देवता मानता है, इसी प्रकार किन्नर समाज की इष्ट देवता है मुर्गीवाली बुचर माता है - " मुर्गीवाली माँ को किन्नर अपनी इष्ट देवता मानते हैं । राजस्थान में उनका वास है, ऐसी उनकी मान्यता है।"[5]

किन्नर समाज अपने विश्वास के प्रति आदर - समाज एवं समर्पण की भावना रखता है। उनके सामाजिक जीवन के हर पहलू में इन आस्थाओं की झलक देख पाती है। मुख्य समाज की तरह किन्नर भी गुरु देवों के प्रति आस्था एवं श्रद्धा रखते हैं। किन्नर इनके प्रकोप से डरते भी हैं। गोपाल की रस्म क्रिया परंपरा के विरुद्ध होने के कारण बुजुर्ग हिजडा कहता हैं कि - "संत जी ने कहा है कि हिजडों की गद्दी का गुरु कोई मर्द हो सकता। यदि ऐसा हुआ तो धरती पर हर हिजडे को मुर्गा देवी का प्रकोप झेलना पडेगा । वह नाच - गाकर कमाने लायक भी नहीं रहेंगे।"[6] किन्नर समाज के लोग नृत्य - गायन करके लोगों का मनोरंजन करते हैं और आशीश देकर शगुन के रूप में रुपये लेकर जाते हैं जिससे उनकी सारी भौतिक आवश्यकताएँ पूरी हो जाती हैं।

किन्नर समाज में आम तौर पर किसी की मृत्यु होने पर लोग रोते हैं। लेकिन किन्नर समाज में किसी हिजडे की मृत्यु पर गद्दी के अन्य हिजडे रोते नही हैं। उनके लिए खुशी की बात हैं। किन्नर की शवयात्रा समाज से छिपकर अंधेरे में मध्यरात्रि के बाद निकलती हैं। उपन्यास में इसका चित्रण यों मिलता है - " दिल्ली में आमतौर पर हिजडे के शव को रात को डन्डे से मारते है उसपर चप्पल जमते बरसते और सडक पर खींचते हुए शमशान घाट ले जाते हैं। इस तरह

शव को शमशाम में ले जाने के पीछे की मान्यता है कि मरनेवाला दुबारा तीसरी योनी में जन्म नही लेगा।"[7]

समाज एवं परिवार के लिए किन्नर अनुपयोगी चीज है। क्योंकि वंश वृद्धी करने में असमर्थ होने के कारण इनमें घर - परिवार या समाज के परिवार को आगे बढाने की क्षमता नही होती है। समाज द्वारा इन्हें अस्वीकारने का कारण इनकी जैविक और यौनिक भिन्नता है। इस उपन्यास में प्रदीप सौरभ लिखते है -"घर में ऐसे बच्चों को पैदा होना उसकी पैदाईश के साथ ही उनकी उपयोगिता को खतम कर देता है । घर में बेटा जरूर हुआ था, लेकिन कुछ दिनों के अंदर ही परिवार को पता चल गया कि वह किसी काम का नहीं है। बढने के साथ उसका पुरुषांग विकसित नही हुआ है।"[8] यहाँ जैविक रूप में शरीर के किसी अंग का अविकसित होना विशेष तौर पर जननांगों का, उसके पूरे व्यक्तित्त्व को ही प्रश्न के घेरे में डाल देता है। वास्तव में यह किन्नर समुदाय का जैविक यथार्थ है। इसी आधार पर समाज ने किन्नर को समाज से बाहर कर दिया है।

किन्नर एक ओर परिवार और समाज से बहिष्कार झेलता है, वही दूसरी ओर राज्य और राष्ट्र में उपेक्षा और अवहेलना का पात्र बनता है। बचपन से ही यौन उत्पीडन और मानसिक संघर्ष का शिकार होते है। किन्नर के पिता यह सोचते है कि लोग उसके पुरुषत्व पर संदेह करेगा और बडा होकर यह बच्चा परिवार की प्रतिष्ठा धूल धूसरित करेगा। उपन्यासकार निकिता के पिता की हालत का वर्णन यूँ करता है - "गौतम साहब में जो अकड थी, वह ढीली पड जाती है। जो हमेशा झूझलाए से रहते है और अजीब तरह की चिंता उनके माथे पर दिखाई देने लगी। बेतर तभी ऐसी है कि गौतम साहब कभी मोजा पहनना भूल जाते तो कभी उनकी कमीज आगे पीछे से निकली होती ऐसा लगता जैसे उन पर कोई पहाड गिर गया हो।"[9] अतः वे जल्द से जल्द उस बालक को या तो ठिकाने लगाने या किन्नरों के बीच छोडने का प्रयास करते है।

इस उपन्यास में आनन्दी अँटी बिना समाज के परवाह किये अपनी बेटी को पढाना चाहती है। वह उसके लिए प्रयास करती है। मगर हर जगह निराशा हाथ लगती है । फिर भी चाहे लडकियों का स्कूल हो या लडकों का। दोनों जगह से एक ही जबाब मिला कि - "जेंडर स्पष्ट न होने के कारण हम दाखिला नहीं दे सकते हैं — यह स्कूल सामान्य बच्चे के लिए हैं, बीच वाले बच्चे को दाखिल देने से स्कूल का माहौल खराब हो जाता हैं।"[10] मतलब यह समाज केवल जैविक असमानता को ही नही झेलता हैं वरन सामाजिक जेंडर असमानता का भी सामना करता है।

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता कि इस उपन्यास में हिजडों के सुख - दुख, हाशिए समाज पर जिंदगी जीने की व्यवस्था, लैंगिक असमानता, भेदभाव की पीडा, आजीविका की समस्या, परिवार से परित्यक्त होने का दर्द आदि को रेखांकित किया गया है। किन्नर समाज से विस्थापित होने के कारण उत्पन्न अकेलेपन की समस्या को उजागर करने का प्रयास भी इस में हुआ है। यह स्पष्ट करने की कोशिश भी हुई है कि किन्नरों का भी दिल होता है और वह धडकता भी है। सचमुच यह उपन्यास किन्नर समाज की सच्ची कहानी है।

संदर्भ : –

1) तीसरी ताली - प्रदीप सौरभ, पृ. सं. 41
2) तीसरी ताली - प्रदीप सौरभ, पृ. सं. 56
3) तीसरी ताली - प्रदीप सौरभ, पृ. सं. 57
4) तीसरी ताली - प्रदीप सौरभ, पृ. सं. 106
5) तीसरी ताली - प्रदीप सौरभ, पृ. सं. 44
6) तीसरी ताली - प्रदीप सौरभ, पृ. सं. 105
7) तीसरी ताली - प्रदीप सौरभ, पृ. सं. 147
8) तीसरी ताली - प्रदीप सौरभ, पृ. सं. 40
9) तीसरी ताली - प्रदीप सौरभ, पृ. सं. 10
10) तीसरी ताली - प्रदीप सौरभ, पृ. सं. 17

सहयोगी प्राध्यापक
आर.सी.पटेल कला वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय
शिरपुर, जिला - धुलिया

‘रेत’ उपन्यास में राजनीति

डॉ.रजनी.पी.बी

अछूते विषयों को केंद्र में रखकर हिंदी कथा साहित्य में अपनी अलग और देशज छवि बनाए रखने वाले एवं अपने लेखन के माध्यम से लोक-मानस की अनुकृतियों को उकेरनेवाले कथाकार भगवानदास मोरवाल का हिंदी साहित्य जगत् में एक विशिष्ट स्थान है। सामाजिक उत्तरदायित्व एवं मानवीय प्रतिबद्धता आपके रचना संसार में सुस्पष्ट नज़र आती है। अपने उपन्यासों के माध्यम से न केवल हिंदी साहित्य को समृद्ध किया है, अपितु इसके माध्यम से वंचित, उपेक्षित और हाशिए कृत समाजों का प्रतिनिधित्व भी कर रहे हैं।

समकालीन युग का सामाजिक जीवन राजनीति से पृथक करके नहीं समझा जा सकता। इसप्रकार समकालीन राजनीतिक परिप्रेक्ष्य को आधार बनाकर लिखा हुआ मोरवालजी का एक प्रमुख उपन्यास है ‘रेत’। इस उपन्यास के केंद्र में स्त्री की सेक्सुअलिटी एवं राजनीति का सेक्सुअल संस्करण है। उपन्यास में राजनीति का आरंभ समाज सेविका सावित्री मल्होत्रा का गाजूकी प्रवेश से होता है। मुरली बाबू नामक राजनेता के लिए वह रुक्मिणी से मिलने आया है। मुरली बाबू रुक्मिणी जैसे कंजरी को पाना चाहता है। राजनीति को इसके माध्यम के रूप में स्वीकार करता भी है।

जब रुक्मिणी एवं मुरली बाबू की मुलाकात हुई तब मुरली बताते हैं कि उन्होंने पार्टी को “जनजाति महिला प्रकोष्ठ बनाने का सुझाव दिया था कि उसे कुछ जनजाति महिलाओं की ज़रूरत पडेगी। मैंने प्रदेशाध्यक्ष को तुम्हारा नाम भी रिकमंड कर दिया है।”

आगे रुक्मिणी को ‘जिला’ जनजाति महिला प्रकोष्ठ, ‘राज्य युवा जनजाति महिला प्रकोष्ठ’ आदि का उत्तरदायित्व सौंपा गया। ‘राजनीति में घटना एवं दुर्घटना अचानक घटित होती है। ‘उपन्यास में एक तथ्य का भी प्रमाण मिलता है कि ‘ राजनीति में सब संभव है। इसलिए अपनी छाया पर भी विश्वास नहीं करना चाहिए। ‘रेत’ में चित्रित राजनीति के दौरान उपन्यासकार यह भी कहना चाहता है कि राजनीति में कोई भी बात निश्चित नहीं होती और कौन किसी के विरुद्ध षड्यंत्र रचा सकता है यह भी कहना मुश्किल की बात है। उपन्यास में चुनाव के वातावरण का यथार्थपरक वर्णन हमें देखने को मिलते हैं।

उपन्यास के अंत में रुक्मिणी मंत्री पद तक हाज़िल करती हैं। मंत्रीमंडल शपथ समारोह का वर्णन भी अत्यंत हू-ब-हू से किया है कि पाठक उसका प्रत्यक्ष दर्शन कर सकता है। रुक्मिणी ने औपचारिकताओं को पूरा कर राज्य के अनुसूचित जाति एवं जनजाति कल्याण विभाग के उपमंत्री के रूप में अपना स्थान ग्रहण कर लिया। सारे मंत्रियों ने ईश्वर की शपथ ली, मगर रुक्मिणी ने ईश्वर के स्थान पर सत्यनिष्ठा की शपथ ली। उसका उत्तर भी रुक्मिणी

देती है कि 'ईश्वर या भगवान इज्जतदारों के होते हैं, हम जैसों के नहीं वैसे भी ईश्वर की शपथ लेकर मुझे करना क्या है। क्यों ईश्वर की झूठी शपथ लेकर उसकी गुनहगार बनूँ, करना तो मुझे वही जो दूसरे अपने - अपने भगवानों की झूठी शपथ लेकर करते हैं।'

कंजर स्त्रियों के रूप में मोरवाल का कथानक एक ऐसी सेक्सुअलिटी की परतें खोलता है जिसे स्त्री के किसी प्रचलित रूप की रोशनी में नहीं समझा जा सकता। सारी समस्या की जड़ स्त्री की देह है। राजनीतिक आधुनिकता का भारतीय अनुभव बताता है कि यह धीरे-धीरे उन सभी तबकों और समुदायों तक पहुँच रही है जो किसी न किसी कारण से कोने में धकेल दिए गए थे। नेता लोग अभिजन दायरों में शामिल कर लिए जाते हैं, भारतीय समाज के लिए आधुनिकीकरण की चालक शक्ति रही यह राजनीतिक आधुनिकता कंजरों के साथ संवाद स्थापित करने के मामले में खुद को भयग्रस्त, महसूस करती है।

कंजरों की पॉलिटिकल इकॉनॉमी सेक्स- वर्क से होनेवाली आमदनी पर आधारित है। यह एक व्यावहारिक हकीकत है कि हर किस्म की राजनीति पर आत्मदमन आधारित यौन शुचिता और ब्रहमचर्य की निहायत अवैज्ञानिक और बेवकूफाना धारणाएँ हावी हैं। मुरली बाबू जैसे ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले राजनेताओं की स्त्री देह पाने की इच्छा से फायदा उठाकर ही रुक्मिणी मंत्री पद तक प्राप्त करती हैं।

राजनीतिक चुनाव के द्वारा कंजर जाति के अंधकारमय भविष्य को उज्ज्वल बनाने की महत्वाकांक्षा जो जनजाति महिला उद्धार सभा की स्थापना के बाद विधान सभा चुनाव में रुक्मिणी की जीत और राज्यमंत्री बनने की परिणति तक पहुँचती है। चुनाव पूर्व राजनीति आज के स्टिंग ऑपरेशन जैसी है। मोरवालजी ने कंजर जाति की महिलाओं के जीवन के निर्मम यथार्थ को हमारे सामने रखा है एवं समकालीन राजनीति की दूषित स्थिति को उकेरा है।

राजनीति कहाँ, कब, कैसे अचानक मोड़ ले लेती है इसका भी पूर्वानुमान नहीं लगाया जा सकता है, इसका अनुभव उपन्यास में मुरली बाबू एवं उनके सहयोगियों को होता है। राजनीति में अनिश्चितताओं का खेल है। कल क्या होगा नहीं कहा जा सकता।

उपन्यासकार ने कंजर समाज की स्थितियों को व्यक्त करने के साथ ही सभ्य समाज की वास्तविक चरित्र एवं आज के राजनीतिक तंत्र के स्याह पक्ष को भी उजागर किया है। एक उपेक्षित समुदाय की स्थिति एवं राजनीतिक तंत्र की वास्तविकता को उजागर करने की दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण उपन्यास है।

सहायक ग्रंथ सूची

1) रेत - भगवानदास मोरवाल

2) उपन्यासकार भगवानदास मोरवाल- मधु खराटे

3) लोकमन का सिरजनहार भगवानदास मोरवाल- लोकेश कुमार गुप्ता

4) उपन्यास का लोक धर्म - डॉ. नैया

अतिथि सह आचार्या
हिंदी विभाग
ऑल सेंट्स कॉलेज
तिरुवनंतपुरम

आत्मकथा

देवयानम्

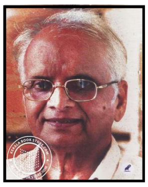

अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना

मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा

(पूर्वप्रकाशित से आगे)

नौवाँ देवपद - धर्मम चर

मेरी बहिन का दूसरा बेटा सूरज कानडा में रहता है। उसकी शादी हुई है मेरे भाई की दूसरा बेटी डॉ. पूर्णिमा से। मेरी बहिन की बेटियाँ विभिन्न स्कूलों-कॉलेजों में पढ़ाती हैं।

हमारी बहिन की शादी के दिनों में ही मेरे छोटे भाई वी.परमेश्वर शर्मा का उपनयन संस्कार भी हो गया था। उसने ओरीस्सा (उडीसा) के बरहमपुर मेडिकल कॉलेज में अपनी डाक्टरी की थी। उसके बाद तिरुवनंतपुरम के श्रीरामकृष्ण चारिट्टबल अस्पताल में रेज़िडेंट डॉक्टर के पद पर उनकी नियुक्ति हुई थी। वहाँ काम करते हुए उसने तिरुवनंतपुरम मेडिकल कॉलेज से अपना एम.एस. भी किया। फिर सरकारी मेडिकल कॉलेज में सर्जन का काम करते समय राजभवन में उसे राज्यपालों का डॉक्टर बना दिया गया। 1975 से लेकर 1992 तक राजभवन में जितने राज्यपाल आये थे उन सबों की उन्होंने सेवा की थी। उसके बाद अपनी पीएच.डी करने केलिए उसने यह नौकरी छोड दी थी; लेकिन न जाने क्यों उसका वह स्वप्न सफल न हो पाया था। इसलिए फिर से श्रीरामकृष्ण के अस्पताल में काम करने लगा और उसके बाद करामना नामक प्रदेश के पी.आर.एस. अस्पताल के कनसलटन्ट (उपदेश देनेवाला) सर्जन का काम भी उसने किया था। 2005 तक वह यह काम करता रहै। य़इसी बीच अपने पेट और यकृत की बीमारी से पीड़ित हो वह सदा के लिए हमसे बिदा हो गया। उसका अप्रत्याशित निधन हम सब के गहरे दुःख का कारण बना।

हमारी बूढ़ी माँ के दुःख की गहराई मैं कैसे समझाऊँ आपको? चालीस वर्ष तक पहुँचनेवाली थी कि उनका पति इह छोड चले गये। बुढ़ापे में उनकी आँखों का प्रकाश नष्ट हो गया। इन सब के ऊपर अब इस तीव्र पुत्र-वियोग का कठिन संघर्ष। अपनी ज़िंदगी के इस दुःख-सागर में तडपती-तैरती वे किसी तरह 93 वर्ष के उम्र तक जीवित रही थी। 2009 फरवरी के अठारहवीं को माँ हम से दूर चली गई। यह सोचकर मैं अपने मन को शांत करना चाहता हूँ कि माँ-बाप-भाई में तीनें, ईश्वर के पास पहुँचे होंगे; उनको कैवल्य प्राप्त किया होगा। विधिना जो करे सो भला है। महाकवि श्री. श्रीधर मेनोन की ये पंक्तियाँ याद आती है -

बुलाया मुझे मृत्यु देवता प्यार से,
छोड़ वहीं सब कुछ अपना
अरु आओ साथ मेरे; हो गया मुहूर्त्त
बुझा दूँ चिराग तेरा।

कवि के ही दूसरे शब्द इस प्रकार हैं -

"कैसा है यह बंधन तेरा, हाय!
शील पुराना
गाकर सुनाऊँ किसी को?
नीली चाँदनी सी मासुम कल्पना
करती आलिंगन तडपती चेतना मेरी
कह डाला कहानी अपनी अजान
साफ कर दो देव, कृपा कर।

(कृष्णाष्टमी)

मेरे भाई का एकमात्र पुत्र डॉक्टर विवेक पीडियाट्रिक सर्जन है। तिरुवनंतपुरम मेडिकल कॉलेज में वह अपना काम करता है। डॉ. अपर्णा उसकी पत्नी है और उनकी तीन बेटियाँ है - साधना उपासना एवं लावण्या। अपने इस बुढ़ापे में मैं उनके साथ रहता हूँ।

'पट्टिनत्तार' (काव्य)

अनुवादक : प्रो.डी. तंकप्पन नायर **मूल : पी. रविकुमार**

(9) पट्टिनत्तार सरकंडा समेत भटकता है

यह सरकंडा
आगे कब गन्ना बनेगा?
जन्म जन्मांतर की
ये निरर्थक यात्रायें
आगे कब होंगी समाप्त?
अतिक्रूर और
अतिनिंद्य
आवर्तन!
तृण होकर
कीड़ा होकर
चिड़िया होकर
जीवित काल से
हुआ तृप्त

शिला होकर
वृक्ष होकर
खड़े काल से
हुआ तृप्त

नेवल होकर
कीड़ा होकर
बिताये खराब काल से
हुआ तृप्त

साँप होकर
दिन-रात
रेंगे काल से
हुआ तृप्त

भूत होकर
असुर होकर
देवता होकर
व्यतीत काल से
हुआ तृप्त

माँ के गर्भपात्र में
भीति से काँपते हुए
पीड़ा से दुखते हुए
लेटे काल से
हुआ तृप्त

माता होकर
पत्नी होकर
आँसू बहाए काल से
हुआ तृप्त

भीषण व्याधि से
आधि से
तडपे काल से
हुआ तृप्त

ज्ञानहीन पिशाच होकर
अंधकार में
भटके काल से
हुआ तृप्त

मूक होकर
बधिर होकर
अंधा होकर
अंगहीन होकर
चले काल से
हुआ तृप्त

जन्म जन्मांतर की
ये निरर्थक यात्रायें
आगे कब होंगी अंत?

अतिक्रूर और
अतिनिंद्य आवर्तन!
यह सरकंडा
आगे कब गन्ना बनेगा!

(10) सरकंडा गन्ना बनता है

तिक्त
भग्न
व्यथित
व्यर्थ

जन्मांतर
यात्राओं के अंत में,

शिवस्मृति में
जल-भुनकर,
तिरुवेण्काटु
तिरुविटैमरुतूर
तिरुतिल्लै
तिरुक्कुऱ़ालम
तिरुक्कषुकुन्ऱ़म
तिरुवारूर
तिरुमधुरा
तिरुचेन्कोटु
तिरुवण्णामला
तिरुकांचीपुरम और
तिरुक्काळहस्ति को
पीछे छोडकर
पट्टिनत्तार
तिरुवोऱ़्ऱ़यूर पहुँचता है -
सरकंडा गन्ना बनता है!
मीठा होता है!

पट्टिनत्तार गाता है :
हे शिव!
सर्वत्र पूर्ण
अखंड बोधस्वरूप तू
मुझमें उपविष्ट होकर
मुझे चलाने की बात को
जाने बिना

सबकुछ करनेवाला मैं हूँ
ऐसा विचारकर
अहंकार कर
मैं मतिहीन हुआ

ओह शिव!
सर्वत्र व्याप्त
हे अखंड बोध स्वरूप!
जानवर
चिड़ियाँ

रेंगनेवाले जन्तु
पेड़
देवता लोग
जलजीवी
मनुष्य-
मैंने नहीं जाना कि
इन सब में
तू ही
व्याप्त है
न जाना तथ्य

ओह शिव!
सर्वत्र पूर्ण
अखंड बोध स्वरूप!

मैंने नहीं जाना कि
बीज होकर
पेड़ होकर
फूल होकर

फल होकर
आकाश होकर
प्रकाश होकर
बोध होकर
चमकनेवाला
तू ही है।

ओह शिव!
सर्वत्र व्याप्त
हे अखंड बोधस्वरूप!
मैंने नहीं जाना कि
मन होकर
विचार होकर
स्वप्न होकर
माया होकर
तू प्रतिभासित है।

पट्टिनत्तार
आनंद से
उन्मत्त होता है!

पट्टिनत्तार को
लगता है कि मानों
अप्रतिबंध और
अक्षय
अखंड स्नेह
सब को ढूँढता हुआ
पहुँच गया हो,
पट्टिनत्तार के
चारों ओर

तिरुवोऱ्ऱियूर के
जंगल में और समुद्रतट पर
खेल रहे
ग्वालबालक
भाग आते हैं!

बकरियाँ
गायें
भैंसें
गधे
नित्य
शरण ढूँढते हुए
स्थल-काल भूलकर
मानों एक स्वप्न सदृश
पट्टिनत्तार की ओर
चले आते हैं!

पट्टिनत्तार
एक गधे के बच्चे को
गले से लगाकर चुंबन करता है
बकरी के बच्चे को
भैंसे के बच्चे को
गाय के बछडे को
सीने से लगाता है
असीम स्नेह से
ग्वाल बालकों को
आश्लेष करता है।

पट्टिनत्तार
उनके साथ नाचते-गाते
आनंदमग्न होता है!

ग्वाल बालक
बकरियाँ
गायें
भैंसें
गधे सब
आनंदमग्न होते हैं
जंगल सागर हवा
सूर्य चंद्र
भूमि और आकाश
सब आनंदमग्न होते है!

समस्त चराचर
आनंदमग्न होते हैं

पट्टिनत्तार गाता है:
भूमि
जल
अग्नि
वायु
आकाश
जैसे पंचभूतों को
मरते गिरते
मैंने देखा
उन भूतों में से
शब्द
स्पर्श
रूप
रस और
गंध को
मिटते गिरते
मैंने देखा
पंचेंद्रियाँ
मिटकर राख बनीं -

मन
बुद्धि
चित्त और
अहंकार
जलकर राख बने -

सारे ज्ञान
जलकर राख बने -
मैं निर्मल हुआ -
मैं शिव हूँ!

उपसंहार

ममता रूपी हाथी ने छिपाया पेड़
को ममता रूपी हाथी छिप गया
पेड़ में परमार्थ को छिपाया
पंचभूतों ने
परमार्थ में छिप गए पंचभूत।

* * * * *

प्रश्नोत्तरी

डॉ. रंजीत रविशैलम

1. 'वेणुसंहार' किसकी नाट्य रचना है?
2. 'अधिकार सुख कितना मादक और सराहीन होता है।' किस नाटक का वाक्य है?
3. अज्ञेय ने किसके उपन्यासों में "एक अखंड मानवी विश्वास की चिनगारी सुलगती' देखी है?
4. 'रिपार्ताज' किस भाषा का शब्द है?
5. रीतिकाल को 'रीतिकाव्य' किसने कहा?
6. अशोक कालीन इतिहास की वास्तविकता का चित्रण आनंद प्रकाश जैन के किस उपन्यास का प्रतिपाद्य है?
7. हिंदी कहानी का उद्भव किस युग से माना जाता है?
8. 'नयी कहानी' नाम का सर्वप्रथम प्रयोग किसने किया था?
9. कच्चान व्याकरण किस भाषा का व्याकरण ग्रंथ है?
10. डॉ. बच्चन सिंह के अनुसार कुंडलिया छंद के प्रथम प्रयोक्ता कौन है?
11. 'बीसलदेव रासो' किसकी रचना है?
12. 'ससुरी निंद गेल, बदुड़ी जागभ' किसकी उक्ति है?
13. 'बीतियों का चित्राधार' किसकी संस्मरणात्मक रचना है?
14. हिंदी का 'बायरन' किसे कहा जाता है?
15. 'नकेनवाद' का दूसरा नाम क्या है?
16. 'हरी घास पर क्षण भर' किसकी प्रसिद्ध कविता है?
17. राजस्थानी गद्य की प्रमुख रचना 'पंचाख्यान' का रचनाकार कौन है?
18. 'ए डिक्शनरी ऑफ इंग्लिश एण्ड हिंदुस्तानी' किसकी प्रसिद्ध रचना है?
19. हिंदी के प्रथम समाचार पत्र का नाम क्या है?
20. 'राजाशिवप्रसाद' सितारे हिंद किसके गुरु थे?

उत्तर

1. बालकृष्ण भट्ट
2. स्कन्दगुप्त
3. रेणु के उपन्यासों में
4. फ्रांसीसी
5. जॉर्ज ग्रियर्सन
6. कुणाल की आँखें
7. द्विवेदी युग
8. दुष्यंत कुमार
9. पाली
10. शाङ्र्धर
11. नरपति नाल्ह
12. कुक्करीपा
13. प्रो.हिल्डा जोसेफ
14. हरिवंशराय बच्चन
15. प्रपद्यवाद
16. अज्ञेय
17. फतहराम वैरागी
18. जॉन बौर्थविक गिलक्राइस्ट
19. उदन्तमार्तण्ड
20. भारतेंदु

केरल हिन्दी प्रचार सभा के पूर्व मंत्री स्व. एम.के.वेलायुधन नायर की
पुण्य-तिथि सम्मेलन के विविध दृश्य

RNI No. 7942/1966
Date of Publication : 15-05-2024
Date of posting : 20th of Every month

KERAL JYOTI

MAY 2024

Vol. No. 61, Issue No.02
Regn. No. KL/TV(S) 381/2022-2024
Price Rs. 25/-

A monthly Publication of Kerala Hindi Prachar Sabha approved for School Libraries by the Education Dept., Govt. of Kerala as per notification No. B-3 / 4036/83 SIE dated 20-9-1985
Approved by University of Kerala as per order No. Ac. A II / 1 / 31965 / Std. Journals/2013 / dtd : 27-6-2013

निर्मला कॉलेज मूवाट्टुपुष़ा के छात्रों के साथ केरल हिन्दी प्रचार सभा के पी.जी. डिप्लोमा अनुवाद एवं पत्रकारिता के प्राध्यापक और मंत्री

श्रीनारायणा ओपण विश्वविद्यालय की संयोजक एवं हेड ऑफ स्कूल डॉ.सोफिया राजन अपनी किताबें सभा के ग्रन्थालय को भेंट करती हैं।

केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम-695014 के लिए मंत्री अ.व.डॉ.मधु बी द्वारा प्रकाशित, राष्ट्रवाणी मुद्रणालय, केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवननंतपुरम-695014 में मुद्रित, प्रो.डी.तंकप्पन नायर व डॉ.रंजीत रविशैलम द्वारा संपादित

Published by the Secretary, Adv. Dr. B. Madhu for Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695014 Printed at Rashtravani Mudranalaya, Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695014 & edited by Prof.D.Thankappan Nair & Dr.Renjith Ravisailam